श्रीरामानन्ददिग्विजयः

यजुर्वेद–सामवेद–दशोपनिषद्–वेदान्तदर्शनेषु

संस्कारभाष्यप्रणेत्रा

रामानन्ददिग्विजय-भारतपारिजात-पारिजातापहार-

पारिजातसौरभेतिचतुर्णां संस्कृत-

महाकाव्यानां रचयित्रा

पण्डितराज–सारस्वतसार्वभौमेत्युपाधि-

द्वयेन काशीपण्डितसभाप्रदत्तेन

समलङ्कृतेन

कवितार्किक–स्वामिश्रीभगवदाचार्येण

विरचितः

श्रीरामानन्ददिग्विजयः

यजुर्वेद–सामवेद–दशोपनिषद्–वेदान्तदर्शनेषु

संस्कारभाष्यप्रणेत्रा

रामानन्ददिग्विजय-भारतपारिजात-पारिजातापहार-

पारिजातसौरभेति चतुर्णां संस्कृत-

महाकाव्यानां रचयित्रा

पण्डितराज-सारस्वतसार्वभौमेत्युपाधि-

द्वयेन काशीपण्डितसभाप्रदत्तेन

समलङ्कृतेन

कवितार्किक–स्वामिश्रीभगवदाचार्येण

विरचितः

प्रकाशिका—

अध्यापिका श्रीचन्द्रदेवी

"मातृ-संस्मृति" बंगला

काश्मीरा सोसाइटी

अहमदाबाद–७

तृतीया आवृत्ति मूल्य ४)

मुद्रक—

बालकृष्ण शास्त्री

ज्योतिष प्रकाश प्रेस,

कालभैरवमार्ग, वाराणसी।

आशीर्वचनम्

अहमदाबाद-ठक्करनिवासनिवासी श्रीमान् ठक्कर भगवानदासजी और उनके अनुज श्रीमान् चमनलाल ठक्कर, बी. एस्-सी. के पवित्र और अयाचित द्रव्य-साहाय्य से इस पवित्र ग्रन्थ का प्रकाशन सुलभ हो सका है। भगवान् उन्हें और उनकी दान-शक्ति को दीर्घायु और दिगन्तव्यापिनी बनावें, यह आशीर्वाद है।

राजनगर सोसाइटी
अहमदाबाद–७
२६–८–६७

स्वामी भगवदाचार्य

श्रीरामानन्ददिग्विजयकी विषयसूची

प्रथम सर्ग (१)

(१–९ †) मङ्गलाचरण (१०–१९) कथाप्रसङ्गावतार (२०–३४) गौका रूप धारण करके पृथिवीका ब्रह्माजीके पास गमन। ब्रह्माजीके साथ पृथिवीका इन्द्रलोकमें गमन। इन्द्रकृत ब्रह्माजीका स्वागत। इन्द्रलोकमें आगमनका ब्रह्माजीके द्वारा कारणवर्णन। (३५–५४) सब देवोंके साथ इन्द्रका, ब्रह्माजीका और पृथिवीका साकेतगमन। साकेतवर्णन। श्रीराम-दर्शन। स्तुति। (५५–७७) रामजीकी आज्ञासे साकेत आनेके कारणका देवों द्वारा वर्णन। (७८–८१) रामानन्दके रूपमें अवतार लेकर पृथिवीपर आनेकी रामजीकी प्रतिज्ञा। देवोंका इन्द्रलोकगमन।

द्वितीय सर्ग (२)

(१–१९) प्रयागवर्णन। (२०–३१) श्रीपुण्यसदन और श्री सुशीलाका वर्णन (३२–४१) सन्ततिके न होनेसे श्रीसुशीलादेवीके सामने श्रीपुण्यसदनजीकी चिन्ता (४२–४६) सुशीलादेवीका पतिको सान्त्वनाप्रदान (४७–५६) पुत्रप्राप्तिके लिये तप और भगवत्पूजन (५७–६७) तपसे प्रसन्न होकर विष्णुका प्राकट्य और दम्पतीकृत स्तुति। रामानन्दके रूपमें आनेकी विष्णुकी प्रतिज्ञा।

तृतीय सर्ग (३)

(१–१०) श्रीसुशीलाजीको गर्भ। गर्भावस्थाका वर्णन। (११–१९) ज्योतिर्विदोंका आगमन और तत्कृत गर्भस्थ महान् आत्माकी सूचना। (२१–३१) पुनः गर्भावस्थाका वर्णन (३२–४४) अवतारकालसे पूर्व ही वैमानिकादि देवोंका आगमन और प्रसूतिगृह आदिका निर्माण।

---

† इन दो संख्याओंमें सर्वत्र पहिली संख्या सर्ग बताती है और दूसरी श्लोक।

श्रीरामानन्दका प्रादुर्भाव। अन्य देवों और देवियोंका आगमन। तीर्थनदियों और वेदपाठी ब्राह्मणोंका आगमन। (४५–५५) जननोत्तर-कालकी क्रियाएँ।

चतुर्थ सर्ग (४)

(१–१०) श्रीरामानन्दजीके पास आकर सरस्वतीका विलाप (११–२३) श्रुतियोंका आगमन और उनका दुःखवर्णन। (२४–३१) गौओंका आना और उनका दुःखवर्णन (३२–४३) अवतारसूचक तेजका फैलना। बाललीला।

पञ्चम सर्ग (५)

प्रथमसे ही नियत, द्वादश शिष्य ब्रह्मादिकी उत्पत्ति (१–४०)।

षष्ठ सर्ग (६)

(१–३५) रामानन्दजीका बढ़ना। उपनयनसंस्कार। उस अवसर पर देवोंका आगमन और मण्डपनिर्माण। (३६–३९) काशीमें श्रीराघवानन्दजीके पास पिताके साथ रामानन्दका जाना। (४०–५५) वसन्तवर्णन। देवोंकी कामातुरता और उनका लौटाया जाना। (५६–६८) काशीके पास पहुँचना। गङ्गाजीका दर्शन और वर्णन। गङ्गाजीको रामानन्दका नमन। नारीरूपसे गङ्गाजीका प्राकट्य। गङ्गाजीकृत रामानन्दकी स्तुति। गङ्गाजीका अन्तर्धान। (६९–७६) काशीदर्शन। पञ्चगङ्गाघाटपर श्रीमठमें श्रीराघवानन्दजीके समीप आगमन। प्रणाम। ब्रह्मचारी बननेकी प्रार्थना। पुण्यसदनजीकी भी राघवानन्दस्वामीसे रामानन्दको पढ़ानेके लिये प्रार्थना। राघवानन्दजीकी स्वीकृति। पुण्य-सदनजीका प्रयाग लौटना। (७७–८९) रामानन्दकी विद्यासे राघवा-नन्दजीको परम सन्तोष।

सप्तम सर्ग (७)

(१–२१) रामानन्दको घर जानेकेलिये राघवानन्दजीकी आज्ञा।

रामानन्दजीकी घर जानेमें अरुचि। गुरु-शिष्यका वार्तालाप। (२२–६३) उसी समय रामानन्दको लेनेके लिये उनके माता-पिताका आगमन। पुत्रसम्मेलन। शास्त्रपरीक्षा। पुत्रको घर ले जानेकी राघवानन्दजीसे आज्ञा माँगना। आचार्यकी अनुमति। रामानन्दकी अस्वीकृति। आकाशवाणी। विराट्स्वरूपदर्शन। रामानन्दको संन्यासी होनेकी पिताकी अनुमति। संन्यासदीक्षा।

अष्टम सर्ग (८)

(१–१७) स्वामी रामानन्दका योगसाधन। दुर्जनानन्द योगीकी दुर्जनता। उसका मरण। उसके शिष्यों द्वारा किये गये उपद्रव। आकाशवाणी। उन शिष्यों का प्रायश्चित्त। (१८–२७) एक मस्जिदका राममन्दिर बन जाना। (२८–३०) उसी मन्दिरमें योगसिद्धि। आत्मसाक्षात्कार। (३१–४६) अनन्तानन्दजीका वहाँ आगमन और शिष्य होना।

नवम सर्ग (९)

पीपाजीकी कथा (१–३७)।

दशम सर्ग (१०)

(१–२०) पीपाजीके दूतका गाङ्गरौनगढ़से आगमन। पीपाजीका पत्र। स्वामीजीका गाङ्गरौनगढ़ जानेका सङ्कल्प और प्रयाण। मार्गमें एक दुष्ट योगीका समागम। (२१–५२) गाङ्गरौनगढ़में स्वामीजीका पहुँचना और वहाँ सत्कार।

एकादश सर्ग (११)

वहाँ प्रपत्तिका उपदेश (१–५१)।

द्वादश सर्ग (१२)

वहाँ ही वैष्णवोंके धर्म और मर्यादाका उपदेश (१–६४)।

त्रयोदश सर्ग (१३)

वहाँसे स्वामीजीके चलनेकी बातसे पीपाजीका दुःख। राज्यत्याग करके स्वामीजीके साथ चलनेका आग्रह। स्वामीजीका निषेध और पश्चात् अनुमति। महाराणी स्मृतिदेवीसे पीपाजीका आज्ञा माँगना। अन्तमें उनकी भी विलापपूर्वक अनुमति। छोटे भाईको राजगद्दीपर बैठाना। स्वामीजीके साथ प्रयाण (१–८९)।

चतुर्दश सर्ग (१४)

(१–८) रैवतक (गिरिनार) का वर्णन। (९–२०) इन्द्रका विमानके साथ रैवतकपर आना। स्वामीजीका रैवतकपर पहुँचना। इन्द्रकृत स्वामीजीकी पूजा। पादुकास्थापन। स्वामीजीको नीचे पहुँचाकर इन्द्रका स्वर्गगमन। (२१–३५) एक जैनसाधुके प्रश्नोंका समाधान। (३७–४३) यादवस्थली और सोमनाथकी दुर्दशाका दर्शन। पश्चात्ताप। (४४–५४) द्वारका। आबू। आबूमें रघुनाथजीकी स्थापना। आमेर। उज्जैन। ब्रजयात्रा। अयोध्या। काशी।

पञ्चदश सर्ग (१५)

(१–४०) कनिष्ठदण्डीकी वार्ता। (४१–६५) महासेनपण्डितका काशीको जीतनेकी इच्छासे काशीमें आगमन। श्रीमठमें स्वामीजीसे शास्त्रार्थके लिये उनका आगमन। पीपाजी द्वारा उनका गर्वगलन। स्वामीजीसे अपराध क्षमापन। स्वामीजीका उन्हें उपदेश देना। (६६–११४) अपारतान्त्रिककी कन्या विद्याकी कथा।

षोडश सर्ग (१६)

एक अद्वैतवादी विद्वान्के साथ स्वामीजीका शास्त्रार्थ (१–६३)।

सप्तदश सर्ग (१७)

(१–७) स्वामीजीसे सुरसुरानन्दजीके दस प्रश्न। (८–३८) दिल्लीके बादशाहके दूतोंका आगमन। चमत्कार। बादशाहके गुरु तक्कीका

स्वामीजीके पास आगमन। उसके प्रश्न। पराजित होकर तर्कीका दिल्ली लौटना। वहाँसे बादशाह द्वारा भेटोंका भेजा जाना। अस्वीकार। (३९-१५१) काशीसे स्वामीजीका देशाटन। महाराष्ट्रमें सिद्धसेनगणिके साथ प्रश्नोत्तर। उसका और अन्य जैन साधुओंका वैष्णव होना (१५२-१५८) दक्षिणयात्राप्रयाण।

अष्टादश सर्ग (१८)

(१-२६) महीशूर (मैसूर) में धर्मोपदेश। (२७-५४) वहां ही सभामें सुरेश्वराचार्यके प्रश्नोंके उत्तर। (५५-६४) उनका पराजित होकर वैष्णवी दीक्षा लेना। (६५-६८) अन्योंको भी वैष्णव बनाकर स्वामीजीका काशीमें आगमन।

एकोनविंश सर्ग (१९)

(१-१०) अयोध्यामें यवनोंके अत्याचारकी आकाशवाणीसे स्वामीजीको सूचना। (११-२९) स्वामीजीका अपने शिष्योंको अयोध्या भेजना। जो हिन्दू, मुसलमान बनाये गये थे उनका तथा मुसलमानोंका भी वैष्णवयन्त्रसे हिन्दू बनना। हिन्दुओं द्वारा उनका बहिष्कार। स्वामीजीको इसकी सूचना। (३०-४३) विमानसे स्वामीजीका अयोध्या पहुँचना। (४४-५१) सरयूकृत स्वामीजीकी स्तुति। (५३-७९) हिन्दुओंको स्वामीजीका उपदेश। पतितपरावर्तन। काशीपुनरागमन।

विंश सर्ग (२०)

(१—४) काशीनिवासवर्णन। (५-३७) काश्मीरी पण्डितोंका स्वामीजीके पास आगमन और स्तुति। (३८-५१) देवराज इन्द्रका आगमन और पुनः साकेत पधारनेकी स्वामीजीसे उनकी प्रार्थना। (५२-६७) प्रार्थनास्वीकार। स्वामीजीका शिष्योंको उपदेश। (६७-७९) धर्मप्रचारकी व्यवस्था और परधाम प्रयाण।

(१-२३) अन्तमें ग्रन्थकारकी सूचना॥

(१-८२) रामानन्ददिग्विजयके कुछ सुभाषित श्लोक॥ इति॥

श्रीरामानन्ददिग्विजयमें प्रयुक्त प्रतिसर्ग
छन्दोंकी सूची

सर्ग	छन्दोनाम	श्लोकसंख्या
१	अनुष्टुप्	८०
”	वसन्ततिलका	१
२	उपजाति	६६
”	मालिनी	१
३	उपजाति	५३
”	मञ्जुभाषिणी	१
”	प्रहर्षिणी	१
४	रथोद्धता	४२
”	शार्दूलविक्रीडित	१
५	वसन्ततिलका	३९
”	पृथ्वी	१
६	अनुष्टुप्	८४
”	वसन्ततिलका	२
”	रथोद्धता	३
७	द्रुतविलम्बित	४८
”	मालिनी	२
”	इन्द्रवज्रा	१
”	मालिनी	२
”	वसन्ततिलका	४
”	वंशस्थविल	२
”	उपेन्द्रवज्रा	१
”	इन्द्रवज्रा	३
८	मन्दाक्रान्ता	३०
”	वसन्ततिलका	१६
९	स्वागता	३६
”	शालिनी	१
१०	वंशस्थविल	३०
”	वसन्ततिलका	१
”	वंशस्थविल	८
”	वसन्ततिलका	१
”	शिखरिणी	३
११	प्रमिताक्षरा	५०
”	नाराच	१
१२	वसन्ततिलका	५८
”	इन्द्रवज्रा	१
”	उपजाति	४
”	शार्दूलललित	१
१३	द्रुतविलम्बित	७८

सर्ग	छन्दोनाम	श्लोकसंख्या
१३	मालिनी	१
"	उपजाति	१
"	वसन्ततिलका	२
"	वंशस्थविल	५
"	उपजाति	२
१४	उपेन्द्रवज्रा	५०
"	उपजाति	२
"	वसन्ततिलका	१
"	अनुष्टुप्	१
१५	अनुष्टुप्	११३
"	चकिता	१
१६	उपजाति	५८
"	शार्दूलविक्रीडित	१
१६	मालिनी	४
१७	अनुष्टुप्	११८
"	वसन्ततिलका	२
१८	वंशस्थविल	६५
"	मालिनी	१
"	स्रग्धरा	३
१९	अनुष्टुप्	७८
"	वसन्ततिलका	१
२०	इस सर्गमें ७९ श्लोक हैं। यह प्रकीर्ण सर्ग है। अतः टीकामें सब छन्दोंके नाम लिख दिये गये हैं। वहाँ देखें।	

वेदभगवद्गीतोपनिषद्भाष्यकार-कवितार्किक-
सारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-
सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-परमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य्यविरचित:

श्रीरामानन्ददिग्विजय:

स्वोपज्ञवैजयन्त्याख्यहिन्दीव्याख्यया समेत:

प्रथम: सर्ग:

अतसीगुच्छसच्छायं माया यं नातिवर्तते ।
तं श्रीरामं गुणग्रामं वन्दे बुद्धिविशुद्धये ॥ १ ॥

रामानन्दमुनीन्द्रस्य दिग्विजयो मया कृत: ।
सनाथीक्रियते सोद्य वैजयन्त्याख्यटीकया ॥ १ ॥

शिष्टाचारादिके द्वारा अनुमित 'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्' इत्यादि श्रुतिसे विहित स्वेष्टदेवतास्मरणरूप मङ्गलका ग्रन्थसमाप्तिके लिये ग्रन्थारम्भमें उल्लेख करते हैं। अतसीपुष्पके समान श्यामकान्तिवाले तथा माया-अविद्या जिनको कभी भी उल्लङ्घन नहीं करती, ऐसे अखिल कल्याणगुणाकर भगवान् श्रीरामजी महाराजको स्वबुद्धिकी पवित्रताके-लिये प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

नीलपाथोजसङ्काशप्रकाशिप्रवरच्छविम् ।
जगज्जन्मादिबीजं श्रीजानकीजानिमाश्रये ॥ २ ॥

नीलकमल के समान सुन्दर और ओजस्वी शरीरवाले, सृष्टि, स्थिति और प्रलयके मूलकारण श्रीजानकीनाथका आश्रय लेता हूँ ॥ २ ॥

श्रेयसां परमं धाम साकेताभरणं परम् ।
सर्वलोकैकशरणं जानकीरमणं भजे ॥ ३ ॥

सम्पूर्णकल्याणगुणोंके सुन्दरभण्डार, साकेतलोकके अलङ्कारभूत, परात्पर, सर्वप्राणियोंके एकमात्रशरण श्रीजानकीरमणको मैं भजता हूँ ॥ ३ ॥

जगदामोदकाखण्डशीतरोचीरुगाननाम् ।
शरणागतरक्षित्रीं मातरं जानकीं श्रये ॥ ४ ॥

संसारको आनन्दित करनेवाले पूर्णचन्द्र के समान प्रसन्नमुखवाली, शरणागतकी रक्षाकरनेवाली श्रीजानकी माताको भजता हूँ ॥ ४ ॥

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्य्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ ५ ॥

श्रीरामजीमहाराज जिसके आरम्भमें हैं और श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जिसके मध्यमें हैं ऐसी अपने आचार्य्यपर्यन्त गुरुपरम्पराको प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

विरक्तवैष्णवश्रेष्ठं श्रीमद्राममनोहरम् ।
मनोहरगुणाधीशं श्रीशङ्काशसत्प्रभम् ॥ ६ ॥
यस्य मूर्ध्नि स्थितो बिन्दुरिन्दुशोभामचूचुरत् ।
तं समाराध्यपादाब्जं साकेतस्थं गुरुं श्रये ॥७॥ (युग्मम्)

विरक्तवैष्णवोंमें श्रेष्ठ, सुन्दर गुणोंवाले, भगवत्तुल्य तेजवाले, तथा जिनके मस्तकमें ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्यमें बिन्दु शोभित था ऐसे पूज्य चरणकमल राममन्त्रके प्रदाता अत एव परमोद्धारक आचार्यश्री १०८ स्वामी राममनोहर प्रसादजी महाराजका आश्रय लेता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥

सत्सत्कृतसतां मूर्ध्ना वहामि चरणच्युतान् ।
रेणून् हि यत्कृपातन्त्राद्यन्त्रिता विघ्नराशयः ॥ ८ ॥

सज्जनोंसे सत्कृतसत्पुरुषोंके चरणों से गिरेहुए रजको अपने मस्तकपर धारण करता हूँ जिसकी कृपासे सब विघ्नोंके भण्डार बन्द हो जाते हैं ॥८॥

परकीर्तिकलानाथराहोर्दुर्जनरक्षसः ।
संसर्गसर्गशून्यत्वं कामये विघ्नशान्तये ॥ ९ ॥

अन्योंकी कीर्तिरूपचन्द्रमाकेलिये राहुसमान दुष्टरूपराक्षसोंके सम्बन्धाभावको मैं सब विघ्नोंकी शान्तिकेलिये चाहता हूँ ॥ ९ ॥

यस्यापारयशःपारावारं चोल्लङ्घितुं क्षमाः ।
न सुरा नासुराः क्वापि नो नराः किन्नरा न वा ॥१०॥

जिनके अनन्त यशरूप सागरका सुर, असुर, नर और किन्नर भी पार नहीं पा सकते ॥ १० ॥

तस्य श्रीमद्यतीन्द्रस्य गुणान्स्तोतुं समुत्सुकः ।
चिरोदन्याव्यथाशुष्करसनारसपूर्तये ॥ ११ ॥(युग्मम्)

उन श्रीस्वामीरामानन्दजी महाराज के गुणोंका वर्णन करनेकेलिये मैं उत्सुक हूँ उसका कारण केवल चिरकालसे पिपासाकी पीडासे पीडित नीरस जिह्वाकी रसपूर्ति ही है ॥ ११ ॥

यच्चरित्रामृतास्वादादमरा अमराः किल ।
पूता भवतु मे वाणी तदास्वादरसादरा ॥ १२ ॥

जिस चरितामृतके आस्वाद करनेसे देवता लोग भी अमर हो गये, उसीके स्वादिष्ट रसमें आदरवाली मेरी वाणी पवित्र हो ॥ १२ ॥

कविकीर्तितृषानाहं कविताकामिनीं भजे ।
केवलं स्वात्मतोषाय प्रवृत्तिरिह दृश्यताम् ॥ १३ ॥

कवियोंकी कीर्तिप्राप्तिके लोभसे मैं कविताकामिनीका आलिङ्गन नहीं कर रहा हूँ। केवल स्वमनःपरितोषकेलिये ही यह मेरी प्रवृत्ति समझनी चाहिये ॥ १३ ॥

एकदा भारतं वर्षं भारतं दुर्विधेर्वशात् ।
विपदम्भोधिकल्लोलनिर्घोषो व्यापदञ्जसा ॥ १४ ॥

एक समय दैववशात् अत्यन्त प्रभापूर्ण भारतवर्षमें विपत्तिसागरके तुमुल तरङ्गोंका शब्द चारों ओर व्याप्त हो गया ॥ १४ ॥

रामोऽरमत सस्नेहं यस्यां सद्गोत्रजः पुरा ।
कश्यपैः सा समाक्रान्ता दैवाद्भारतकाश्यपी ॥ १५ ॥

प्रथम जिस भूमिमें श्रीरामजीने प्रेमसे क्रीडाएँ की थीं वही भारत-भूमि विधिवशात् मद्यपोंसे आक्रान्त हो गयी ॥ १५ ॥

कृष्णः कृषति यत्रैव कंसादीनसुरान् पुरा ।
हन्त तत्रैव मेदिन्यां प्रादुःषन्ति स्म दुर्जनाः ॥ १६ ॥

प्रथम द्वापरमें जिस भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने कंसादि दैत्योंका सर्वथा नाश किया था, हा ! उसी भूमिमें पुनः दुष्ट उत्पन्न हो गये ॥ १६ ॥

गाः संगोपायितुं यत्र गोपालोऽवातरद्भुवि ।
तस्यामेव प्रववृते तासां संहननं महत् ॥ १७ ॥

जिस भूमिमें गौओंकी रक्षाके लिये गोपाल-कृष्णने अवतार लिया था वहाँ ही गौओंका वध होने लग गया था ॥ १७ ॥

मानवं वेषमादाय सर्वथा धर्मतानवम् ।
यस्यां विश्वम्भरायां स निराकृत महेश्वरः ॥ १८ ॥

जिस भूमिमें प्रभुने मनुष्यशरीर धारण करके धर्मकी क्षीणताको दूर किया था ॥ १८ ॥

कवियोंकी कीर्तिप्राप्तिके लोभसे मैं कविताकामिनीका आलिङ्गन नहीं कर रहा हूँ। केवल स्वमनःपरितोषकेलिये ही यह मेरी प्रवृत्ति समझनी चाहिये ॥ १३ ॥

एकदा भारतं वर्षं भारतं दुर्विधेर्वशात् ।
विपदम्भोधिकल्लोलनिर्घोषो व्यापदञ्जसा ॥ १४ ॥

एक समय दैववशात् अत्यन्त प्रभापूर्ण भारतवर्षमें विपत्तिसागरके तुमुल तरङ्गोंका शब्द चारों ओर व्याप्त हो गया ॥ १४ ॥

रामोऽरमत सस्नेहं यस्यां सद्गोत्रजः पुरा ।
कश्यपैः सा समाक्रान्ता दैवाद्भारतकाश्यपी ॥ १५ ॥

प्रथम जिस भूमिमें श्रीरामजीने प्रेमसे क्रीडाएँ की थीं वही भारत-भूमि विधिवशात् मद्यपोंसे आक्रान्त हो गयी ॥ १५ ॥

कृष्णः कृषति यत्रैव कंसादीनसुरान् पुरा ।
हन्त तत्रैव मेदिन्यां प्रादुःषन्ति स्म दुर्जनाः ॥ १६ ॥

प्रथम द्वापरमें जिस भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने कंसादि दैत्योंका सर्वथा नाश किया था, हा ! उसी भूमिमें पुनः दुष्ट उत्पन्न हो गये ॥ १६ ॥

गाः संगोपायितुं यत्र गोपालोऽवातरद्भुवि ।
तस्यामेव प्रववृते तासां संहननं महत् ॥ १७ ॥

जिस भूमिमें गौओंकी रक्षाके लिये गोपाल-कृष्णने अवतार लिया था वहाँ ही गौओंका वध होने लग गया था ॥ १७ ॥

मानवं वेषमादाय सर्वथा धर्मतानवम् ।
यस्यां विश्वम्भरायां स निराकृत महेश्वरः ॥ १८ ॥

जिस भूमिमें प्रभुने मनुष्यशरीर धारण करके धर्मकी क्षीणताको दूर किया था ॥ १८ ॥

तस्यामेव क्षितौ जातो धर्मक्षयपरिक्षयः ।
कस्य प्रचेतसश्चेतो नादुनोन्निर्दयं तदा ॥ १९ ॥

उसी भूमिमें उत्पन्न हुआ धर्मविनाश किस सहृदय पुरुषके मनको व्यथित नहीं करता था ? ॥ १९ ॥

तदानीं दुःसहक्लेशक्रान्तकाया वसुन्धरा ।
धेनुरूपधरा देवी ब्रह्माणमुपतस्थुषी ॥ २० ॥

उस समय दुःसह दुःखोंसे पीड़ित होकर पृथ्वीमाता गोका रूप धारण करके ब्रह्माके पास गयीं ॥ २० ॥

सादरं तं नमस्कृत्य नमस्कार्या रसाऽरसा ।
विवर्णवदनोवाद स्वां दशामादितोऽखिलाम् ॥२१॥

भगवान्‌की लीलाका आश्रय होनेसे नमस्कार करने योग्य दुःखिनी मलिनवदना वह पृथ्वी ब्रह्माजीको नमस्कार करके आरम्भसे अपनी सम्पूर्णदशाका वर्णनकरने लगीं ॥ २१ ॥

श्रोत्रातिथिं विधायैव तस्यास्तां दुरवस्थितिम् ।
उदतिष्ठत्सुरज्येष्ठः शोकशङ्कुकदर्थितः ॥२२॥

वह ब्रह्माजी पृथ्वीकी उस दीनदशाको सुनकर चिन्तासे व्याकुल होकर उठ खड़े हुए ॥ २२ ॥

इयाय स तुरासाहं वृद्धोऽपि चतुराननः ।
परदुःखासहिष्णोर्हि स्वसुखापेक्षिता कुतः ॥२३॥

वृद्ध ब्रह्माजी उसी समय इन्द्रके पास गये । वृद्ध होनेके कारण जानेमें दुःख तो हुआ होगा परन्तु जो दूसरोंके दुःखको सहन नहीं कर सकते उनको अपने सुखकी अपेक्षा कहाँसे हो ? ॥ २३ ॥

आयन्तं तं विलोक्यैव त्यक्तसिंहासनासनः ।
परमौजा बिडौजास्स प्रत्युत्तस्थौ त्वरान्वितः ॥२४॥

अत्यन्त बलशाली इन्द्र ब्रह्माजीको आते हुए देखकर शीघ्र सिंहासनको छोड़कर सहसा उठ खड़े हुए ॥ २४ ॥

विकसत्पद्मसङ्काशौ पुण्यपादौ प्रजापतेः ।
नमद्धरिशिरोरत्नभाभिः सम्भूषितौ क्षणम् ॥२५॥

नमस्कार करते हुए इन्द्रके शिर—मुकुटमें जड़े हुए रत्नोंकी किरणोंने थोड़ी देरके लिये ब्रह्माजीके पुष्पित-कमल-समान पवित्र चरणोंको अलंकृत कर दिया ॥ २५ ॥

अर्घ्यपाद्यादिभिस्तोयैः सत्कृत्य परमेष्ठिनम् ।
मिलत्करपुटः श्रीमान् व्याजहार शचीपतिः ॥२६॥

अर्घ्य और पाद्यादि जलसे ब्रह्माजीका सत्कार करके हाथ जोड़कर श्रीमान् देवराज बोलने लगे ॥ २६ ॥

सर्वदेवसमाराध्य साध्य सिद्धगणैरपि ।
ऋद्ध सर्वफलैर्वृद्ध कथमाकस्मिकागमः ॥२७॥

हे सर्वदेवोंके पूज्य ! सिद्धगणोंसे भी सिद्ध करने योग्य ! धर्मादि-सर्वफलोंसे पूर्ण वृद्ध ब्रह्माजी ! अकस्मात् आगमन कैसे हुआ ? ॥ २७ ॥

हन्त कष्टं कृतं तत्र कथं नायं जनः स्मृतः ।
लोकाचारं न वीक्षन्ते ह्यथवा भक्तवत्सलाः ॥२८॥

आपने कष्ट किया, मुझे ही वहाँ क्यों नहीं बुला लिया ? अथवा भक्तवत्सल लोग अमुक छोटा है, उसके पास नहीं जाना चाहिये इत्यादि लोकाचारकी ओर दृष्टि नहीं करते ॥ २८ ॥

विधेहि सदृशं कृत्यं निधेहि करुणादृशम् ।
जानीहि मां निजं प्रेष्यमनुजानीहि सत्वरम् ॥२९॥

कृपादृष्टि करिये, मेरे योग्य कार्य बताइये, मुझे अपना दास जानिये; अतः शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ २९ ॥

श्रुत्वैव पद्मयोनेस्तां भारतीं पाकशासनीम् ।
मुखेभ्यः प्रसृताः शब्दाश्चतस्रः श्रुतयो यथा ॥३०॥

इन्द्रके इस वचनको सुनकर ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चारों वेदोंके समान शब्द निकलने लगे ॥ ३० ॥

बलाराते सुराराातिप्रायदुर्जनदूषिता ।
अवनिर्भारतो खिन्ना विद्यते धरणीमणिः ॥३१॥

हे देवराज ! राक्षससमान दुष्टोंसे पीड़ित होकर सब भूमियोंमें श्रेष्ठ भारतभूमि आज अत्यन्त दुःखित हो रही है ॥ ३१ ॥

धर्मसंस्थाविनाशाय प्रवर्तन्ते दुराशयाः ।
ततो धर्मधियो विप्राः खिद्यन्ते तेऽध्वराध्वगाः ॥३२॥

हे इन्द्र ! दुष्ट पुरुष धर्मकी मर्य्यादाका नाश करनेकेलिये प्रवृत्त हो रहे हैं। इससे धर्मप्रिय और यज्ञादिका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मण दुःखित हो रहे हैं ॥ ३२ ।

श्रौतधर्मे समुत्सन्ने निरुद्धे यागकर्मणि ।
क्रतुभुक्त्वं क्रतुभुजां भज्येत क्रतुभुक्पते ॥ ३३ ॥

हे सुरेन्द्र ! वैदिक धर्मके नष्ट हो जानेपर तथा यागादि कर्मोंके रुक जानेपर देवोंको यज्ञका भाग मिलना बन्द हो जायगा ॥ ३३ ॥

तेन सर्वान्सुरांस्तूर्णमादाय जगतीपतेः ।
रघुनाथस्य सान्निध्यं सुरनाथ विधीयताम् ॥ ३४ ॥

इसलिये हे देवेन्द्र ! अखिल ब्रह्माण्डके नायक श्रीरामचन्द्रजी महाराजके समीप सब देवोंको लेकर शीघ्र चलिये ॥ ३४ ॥

ततो वृन्दारकाः सर्वे प्रजापतिपुरस्सराः ।
सर्वानुकूलतोपेतं साकेतमभिवव्रजुः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर ब्रह्मा प्रभृति सब देवता सम्पूर्ण अनुकूलताओंसे युक्त—सर्वसुखप्रद साकेतलोकमें गये ॥ ३५ ॥

हनुमद्गरुडानन्तयुक्तध्वजसुभूषितम् ।
नैकाकारसमारब्धप्राकारपरिवेष्टितम् ॥ ३६ ॥

वह साकेत हनुमान्, गरुड और अनन्त आदिसे युक्त, पताकाओंसे शोभमान तथा बहुत प्रकारकी नगररक्षिका भित्तियोंसे घिरा हुआ है ॥ ३६ ॥

ते गोपुरमतीत्यैरम्मदामृतसरस्तथा ।
सोमाश्वत्थं परिक्रम्य चेलुरग्रेऽमृतान्धसः ॥ ३७ ॥

वे देवता लोग नगरके प्रधान द्वारको पार करके ऐरम्मद नामवाले अमृतसरोवर तथा सोमनामवाले अश्वत्थकी परिक्रमा करके आगे चले ॥ ३७ ॥

महामणिसमाकीर्णं महाकायं मनोहरम् ।
ब्रह्मादयोऽखिला देवा उपसेदुः सुमण्डपम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मादि सब देवता वैडूर्य आदि महामणियोंसे खचित, विशाल, और मनोहर मण्डपमें पहुँच गये ॥ ३८ ॥

तत्रानन्तसहस्रांशुसमानांशुप्रकाशितम् ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणदिव्यायुधपरिग्रहम् ॥ ३९ ॥

उस मण्डपमें अनन्तसूर्यके किरणोंके समान प्रकाशित तथा शंख, चक्र, धनुष् और बाण आदि आयुधोंसे सुशोभित ॥ ३९ ॥

प्रस्फुरत्कान्तिहृद्यारिकिरीटमकरादिभिः ।
हारकेयूरकटकश्रीवत्सादिभिरन्वितम् ॥ ४० ॥

चमकती हुई कान्तिसे मनोहर किरीट मकरादि तथा हार, केयूर, कटक और श्रीवत्सादि दिव्य विभूषणोंसे युक्त—॥ ४० ॥

कौस्तुभप्रभयाक्रान्तं मुक्तादामादिशोभितम् ।
पीताम्बरधरं काञ्चीगुणनूपुरराजितम् ॥ ४१ ॥

कौस्तुभमणिकी प्रभासे व्याप्त, मुक्तादामादिसे शोभित, पीताम्बर धारण किये हुए तथा काञ्चीगुण—कटिसूत्र और नूपुर आदिसे सुशोभित—॥ ४१ ॥

लौकिकालभ्यसौन्दर्यमदाभाभिनिभालितैः ।
विमलादिजनैः शुद्धैश्चलच्चामरहस्तकैः ॥ ४२ ॥
सेव्यमानमधिष्ठानं दिव्यानां सर्वसम्पदाम् ।
ददृशुर्नयनारामं रामं राजीवलोचनम् ॥ ४३ ॥

जिनके हाथोंमें चामर शोभमान थे तथा जिनका सौन्दर्य अन्य साधारण स्त्रीजनोंको दुर्लभ था ऐसे विमलादिजनोंके द्वारा सेव्यमान समस्त दिव्यविभूतियोंके अधिष्ठान, कमलनयन, नयनाभिराम श्रीरामजी-का उन लोगोंने दर्शन किया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

साष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य जगदीश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद्देवाः शिक्षिताः सैनिका इव ॥ ४४ ॥

जिस प्रकारसे सीखे हुए सैनिक लोग एक साथही हस्तपादादि संचालन करते हैं वैसे ही सब देवता एक साथ ही सर्वेश्वर श्रीरामजीको साष्टांग प्रणाम करके उठ खड़े हुए ॥ ४४ ॥

मस्तकन्यस्तहस्तास्ते निरस्तवदनश्रियः ।
अथोपस्थातुमादीशं श्रीशमारेभिरे सुराः ॥ ४५ ॥

प्रणाम करनेके पश्चात् दुःखसे मलिन मुखवाले, हाथ जोड़े हुए वे देवता आदिनाथ श्रीरामजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

नमोऽस्त्वसुरसंघातद्वेषिणे सर्वशेषिणे ।
मायिनेऽपि च मायातः सुदूरमधितस्थुषे ॥ ४६ ॥

असुर समूहके द्वेषी, सर्वशेषी अर्थात् सर्वाध्यक्ष तथा माया के अधिष्ठाता होकर भी उससे पृथक् रहने वाले आपको नमस्कार हो ॥ ४६ ॥

चराचरमिदं सर्वं जगत्त्वत्तः प्रवर्तते ।
त्वयि सन्तिष्ठते पश्चात्त्वय्येव च विलीयते ॥ ४७ ॥

हे भगवन्! यह समस्त चराचर जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है, उत्पन्न होकर आपमें ही रहता है तथा पश्चात् आपमें ही लीन हो जाता है ॥ ४७ ॥

सर्गावस्थितिसंहारक्रियाभिः स्वत्रिरूपताम् ।
द्योतयन्द्योतसे नित्यं वस्तुतस्त्वं तु केवलः ॥ ४८ ॥

हे प्रभो ! यद्यपि आप 'केवल' हैं तथापि सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि क्रियाओंसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अपने इन तीन रूपोंको प्रकाशित करते हुए प्रकाशमान हैं ॥ ४८ ॥

स्वाभाविकं बलं ज्ञानं सामर्थ्यं चावभासयन् ।
सङ्कल्पमात्रमास्थाय निर्मिमीषेऽखिलं जगत् ॥ ४९ ॥

हे प्रभो ! आप अपने स्वाभाविक ज्ञान, बल और सामर्थ्यका प्रकाश करते हुए सङ्कल्पमात्रसे निखिल जगत्का निर्माण करते हैं ॥ ४९ ॥

दिवा भानौ निशीथिन्यां शीतभानौ समीरणे ।
कृशानौ च जगन्नाथ तेजस्तव विभासते ॥५०॥

हे जगन्नाथ ! आपका तेज दिनमें सूर्यमें और रात्रिमें चन्द्रमामें तथा अग्नि और वायु में प्रकाशित हो रहा है ॥ ५० ॥

हिमालयमहौन्नत्यमौन्नत्यं सन्नुतस्य ते ।
पारावारस्य गाम्भीर्यं गाम्भीर्यं प्रथयत्यपि ॥५१॥

हे प्रभो! हिमालयकी ऊँचाई और समुद्रकी गम्भीरता, सत्पुरुषोंसे प्रशंसित आपकी ऊँचाई विशालता और गम्भीरताको प्रकट कर रही है ॥ ५१ ॥

पत्रपुष्पफलक्षीररसस्यपूर्णा वसुन्धरा ।
सर्वसहत्वमपि ते सदाविष्कुरुते प्रभो ॥ ५२ ॥

हे प्रभो ! पत्र, पुष्प, फल, दुग्ध और नाना प्रकारके अन्नादिसे परिपूर्ण पृथिवी आपकी सर्वविषयक उदारताको प्रकट कर रही है ॥ ५२ ॥

महतोऽपि महीयाँस्त्वं लघीयांल्लघुतोऽपि वा ।
परतोऽपि परश्चासि गुरूणामपि सद्गुरुः ॥ ५३ ॥

हे नाथ ! आप बड़ेसे भी बड़े, छोटेसे भी छोटे, परसे भी पर और गुरुओंके भी गुरु हैं ॥ ५३ ॥

त्वमेवोपायभूतोऽसि तथोपेयोऽपि शाश्वतः ।
सर्वेशश्च निरीशोऽसि वेदवेद्योऽसि राघव ॥ ५४ ॥

हे प्रभो ! आप ही सबके उपायभूत हैं। नित्य होनेसे उपेय भी आपही हैं। आपका कोई नियामक नहीं है। वेदोंके द्वारा ज्ञेय भी आपही हैं ॥५४॥

इति तेषां स्तवं श्रुत्वा सर्वश्रुतिकृतस्तवः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा तरसा वचसा हरिः ॥ ५५ ॥

देवताओंकी इस प्रकार स्तुति सुनकर, समस्त वेद जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे सर्वपापनिवर्तक भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न होकर गम्भीर वाणी से बोले ॥ ५५ ॥

कल्याणनिलया देवा अपास्तासुरशत्रवः ।
कथं सुमनसो यूयं युगपत्समुपस्थिताः ॥५६॥

हे कल्याणपात्र ! हे शत्रुहीन ! हे शुद्धान्तःकरणवाले देव ! आज आप लोग एक ही समयमें मिलकर किस कारणसे आये ? ॥ ५६ ॥

धनुष्पाणेश्च कल्याणीं वाणीमाकर्ण्य सस्पृहम् ।
आनन्दोद्रेकसम्मिश्रा निलिम्पाः संबभाषिरे ॥५७॥

धनुर्धारी भगवान् श्रीरामकी कल्याणकारिणी सुन्दर वाणीको अत्यन्त उत्कण्ठासे सुनकर परमानन्दित होकर देवता लोग पुनः बोले ॥ ५७ ॥

नाथ त्वत्पादसंस्पर्शधन्यायां भारतावनौ ।
पुना रक्षःपिशाचाद्या नररूपैरवातरन् ॥५८॥

हे नाथ ! आपके चरणकमलके स्पर्शसे धन्य, भाग्यशालिनी भारत-भूमिमें पुनः राक्षस-पिशाचादि मनुष्यका शरीर धारण करके उत्पन्न हुए हैं ॥ ५८ ॥

यत्र तत्र निहन्यन्ते हिन्दवो धर्मसिन्धवः ।
धर्मध्वंसः समुत्पन्नो दिक्षु सर्वासु सुव्रत ॥५९॥

जहां तहां परमधार्मिक हिन्दुओंका वध हो रहा है । हे राक्षसोंके वध करनेके सुन्दर संकल्पवाले प्रभो ! चारों दिशाओंमें धर्मका नाश हो रहा है ॥ ५९ ॥

सर्वत्र यवना नाथ संवर्तपवना इव ।
देवालयान्दितप्रायान्नित्यं कुर्वन्ति दुर्ग्रहाः ॥६०॥

हे नाथ ! अतिप्रबल यवन प्रलयकालके वायुके समान सर्वत्र सर्वदा देवमन्दिरोंको नष्टप्राय कर रहे हैं ॥ ६० ॥

वर्णाश्रमसदाचारद्वेषलोलुपबुद्धयः ।
बहवः किन्नरा जाता यथा प्रावृषि दर्दुराः ॥६१॥

वर्षाऋतुमें दादुरकी तरह इस समय वर्णाश्रम धर्मके बहुतसे द्वेषी उत्पन्न हो गये हैं ॥ ६१ ॥

श्रुतीतिश्रुतिमात्रेण वञ्चकाः केशलुञ्चकाः ।
श्रुतिसन्तापकैर्वाक्यैः सतां दुन्वन्ति मानसम् ॥६२॥

केस नोचनेवाले वञ्चक जैन लोग वेदशब्दके श्रवणमात्रसे कर्णकटु वाक्योंसे वेदानुयायियोंके हृदयको पीड़ित कर रहे हैं ॥ ६२ ॥

अचारुवाकाश्चार्वाका मूर्छयन्ति वचोविषैः ।
वेदाध्वप्रतिपन्नानां ब्राह्मणानां परम्पराम् ॥६३॥

कठोर वचन बोलने वाले चार्वाक लोग वचनरूप विषसे वेदमार्गानुयायी ब्राह्मणोंके समाजको मूर्छित कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

स्वर्गं गच्छन्ति चेद्यज्ञे पशवः पशवो हताः ।
स्वेषां निहथ किं नाऽथ मातरं पितरं सुतान् ॥६४॥

जैन और चार्वाकके कठोर वचनोंका अनुवाद करते हैं। हे पशुतुल्य वेदानुयायियो ! यदि यज्ञमें मरे हुए पशु स्वर्गमें जाते हैं तो तुम लोग अपनी माता, पिता और पुत्रोंको क्यों नहीं मारते हो ? ॥ ६४ ॥

स्वीकरोति यदा देही शरणं मरणं तदा ।
पिण्डोदकादिकं दत्तमादत्ते तत्र का प्रमा ॥६५॥

जब प्राणी मर जाता है तब तुम्हारे दिए पिण्डदान और जलदानको ग्रहण करता है, इसमें क्या प्रमाण है ? ॥ ६५ ॥

यदि तीर्थोदकस्पर्शात्पापाच्छापाच्च मुच्यते ।
मीनादिका न मुच्यन्ते ते कथं पापयोनयः ॥६६॥

यदि सरयू आदि तीर्थनदियोंके जलोंके स्पर्शसे कोई पाप और शापसे छूटता हो तो उन नदियोंमें सर्वदा निवास करनेवाली पापयोनिवाली मछली आदि क्यों नहीं मुक्त हो जाती हैं ? ॥ ६६ ॥

मृच्छिलाधातुदार्वादिनिर्मिताः प्रतिमा इमाः ।
पूजयित्वा स्वरीप्सा चेदरयो गिरयः कथम् ॥६७॥

यदि मृत्तिका, पाषाण, सुवर्णादि धातु और काष्ठ आदिकी बनी हुई इन मूर्तियोंको पूजकर स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा हो तो इन बड़े-बड़े पर्वतोंके साथ क्यों शत्रुता है कि जिससे इनको नहीं पूजते हो ? ॥ ६७ ॥

जर्फरीतुर्फरीत्यादिवचसां चेत्प्रमाणता ।
कस्याप्यन्यस्य वाक्येषु कोऽपराधो निरीक्ष्यते ॥६८॥

यदि जर्फरी तुर्फरी आदि वेदोंके असम्बद्ध वाक्योंको भी स्वतःप्रमाण मानते हो तो किसी अन्यके वाक्यों का स्वतःप्रामाण्य क्यों नहीं स्वीकार करते ? ॥ ६८ ॥

अक्रमं विक्रमं वाक्यं श्रुतीनां चेत्प्रमा भवेत् ।
तदोन्मत्तप्रलापेषु पुरोभागी कथं भवान् ॥६९॥

यदि वेदोंके क्रमरहित तथा विरुद्धक्रमवाले वाक्य प्रामाणिक हों तो उन्मत्तोंके प्रलापमें आपको क्यों दोष दीख पड़ता है ? ॥ ६९ ॥

ईश्वरो यदि सर्वज्ञो दयालुर्वा कथं तदा ।
मोहशोकभयव्याधिवह्नौ जीवान् क्षिपत्यलम् ॥७०॥

यदि ईश्वर सर्वज्ञ और दयालु है तो जीवोंको मोह, शोक, भय और व्याधिरूप अग्निमें क्यों सदा डालता रहता है ? ॥ ७० ॥

स्वस्वकर्मफलं भुङ्क्ते देही देहीतियाचितः ।
न स दत्तेऽधिकं तर्हि केश्वरस्य दयालुता ॥७१॥

प्राणिमात्र अपने-अपने कर्मोंके फलका भोग करता है । 'हे भगवन्, मुझे अधिक दो' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी यदि ईश्वर अधिक नहीं देता है तो उसकी दयालुता ही क्या है ? ॥ ७१ ॥

सन्ध्या स्वाभाविकी जाता यूयं तां किं करिष्यथ ।
इत्येवमादिहास्योक्त्या श्रद्धारत्नममोषिषुः ॥७२॥

संध्या तो स्वयं हो गयी है, उसे तुम क्या करोगे ? इस प्रकारके हास्योक्तिके द्वारा श्रद्धारूपरत्नको नास्तिकोंने चुरा लिया है ॥ ७२ ॥

वैष्णवागमसिद्धेषु धनुर्बाणाङ्कनादिषु ।
कुतर्कधूरिसम्पातं कुर्वन्ति मुखमुष्टिभिः ॥ ७३ ॥

वैष्णवोंके आगममें तप्त धनुष्-बाण आदिके धारण करनेकी जो विधि है, उसके ऊपर वे सब अपने मुखरूप मुट्ठीसे कुतर्करूप धूलिको फेंक रहे हैं ॥ ७३ ॥

धर्मकल्पतरोर्मूलं पन्नगैः पन्नगैरिव ।
संकुलं तेन दुष्प्रापं तदभूद्धर्मसेविनाम् ॥ ७४ ॥

सर्पके समान कुटिलमार्गगामी दुष्टोंसे धर्मरूप कल्पवृक्ष व्याप्त हो गया है इससे धर्मात्माओंकेलिये वह दुष्प्राप्य हो गया है ॥ ७४ ॥

यागादयः प्रवर्तन्ते नावनौ यज्वनां गृहे ।
वर्षाकाले व्यतीते स्याद्वृष्टेराशा कुतस्तराम् ॥७५॥

पृथ्वीपर याज्ञिकोंके घरमें यज्ञ आदि नहीं होते हैं। क्योंकि वर्षा-कालके बीत जानेपर वृष्टिकी आशा कहाँ से हो ! तात्पर्य यह है कि श्रद्धारूप रत्नके चुराये जानेके पश्चात् अब कहीं यज्ञ नहीं होता है ॥७५॥

वयं हन्त हताः सर्वे यागांशपरिषेविणः ।
हविर्भुजामिदानीं नो हविर्दुर्भिक्षमक्षतम् ॥ ७६ ॥

यज्ञांशके सेवन करनेवाले हम लोग मारे गये। हविर्भोजी हम देवताओंकेलिये अक्षत दुष्काल पड़ रहा है ॥ ७६ ॥

ततो रक्षा भवेद्येन स उपायः प्रवर्त्यताम् ।
इति व्याहृत्य तेऽमर्त्या मौनमुद्रां जगाहिरे ॥ ७७ ॥

अतः हे प्रभो ! जैसे हमलोगोंकी रक्षा हो वैसा उपाय आप करिये। ऐसा कहकर वे सब देवता चुप होकर बैठ गये ॥ ७७ ॥

निशम्येति वचो दैवं देवोऽवादीदरिन्दमः ।
अहं रक्षां विधास्यामि यूयं मा भैष्ट निर्जराः ॥७८॥

देवताओं के इस वचनको सुनकर शत्रुओंका वध करनेवाले श्रीरामजी बोले कि हे देवो ! आप लोग मत डरिये। मैं रक्षा करूँगा ॥ ७८ ॥

तीर्थराजे प्रयागेऽहं ब्राह्मणस्य महौजसः ।
सदनेऽवतरिष्यामि श्रीपुण्यसदनस्य वै ॥७९॥

तीर्थराज प्रयागमें महाप्रतापी ब्राह्मणकुलोत्पन्न श्रीपुण्यसदनके घरमें मैं अवतार लूँगा ॥ ७९ ॥

सुशीलातनयो भूत्वा कुशीलान्वयशालिनाम् ।
रामानन्दाभिधस्तेषां हनिष्याम्यासुरीं गतिम् ॥८०॥

सुशीलादेवीका पुत्र होकर, रामानन्द नाम धारण करके मैं उन नीच वैदिकधर्मविरोधियोंकी आसुरी गतिका नाश करूँगा ॥ ८० ॥

दुर्दम्यदानवदलानि निराकरिष्णो-
विष्णोर्वचःसुरसरिज्जलशीतलाङ्गी ।
आनन्दिताऽपरिमिता परमेश्वरस्य,
द्वारादगादखिलदैवतमण्डली स्वः ॥८१॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजक-स्वामिश्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये प्रथमः सर्गः ।

दुर्दमनीय दानवदलका नाश करनेवाले सर्वव्यापक भगवान् श्रीरामजीके वचनरूप गङ्गाजलसे सर्वाङ्गशीतल तथा आनन्दित होकर वह देवताओंकी अपार मण्डली स्वर्गको गयी ॥ ८१ ॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजक-स्वामिश्रीभगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये स्वोपज्ञवैजयन्त्याख्यव्याख्यायां प्रथमः सर्गः ।

द्वितीयः सर्गः

महीगतान्सर्वजनान् पवित्री-
कर्तुं निकामं तरलोत्तरङ्गा ।
त्रैलोक्यनाथाङ्घ्रिनखप्रसूता,
विराजते यत्र पवित्रगङ्गा ॥ १ ॥

अब अठारह श्लोकोंमें श्रीरामानन्दस्वामीजीकी अवतारभूमि प्रयागका वर्णन करते हैं। जहांपर पृथिवीके सर्वप्राणियोंको अत्यन्त पवित्र करनेकेलिये चञ्चल और सुन्दर तरङ्गवाली, श्रीरामजीके चरणनखसे निकली हुई पवित्र गङ्गाजी विराजमान हैं— ॥ १ ॥

श्रीकृष्णपादाम्बुजरेणुपूता
स्वभावपूताममरस्रवन्तीम् ।
सङ्गन्तुकामा गगनाभिरामा
चकास्ति यत्रैव कलिन्दकन्या ॥ २ ॥

जहाँपर आकाशके समान नीलवर्णवाली श्रीकृष्णजी के चरणकमल-रेणुसे पवित्र हुई श्रीयमुनाजी, स्वभावसेही पवित्र श्रीगङ्गाजीको मिलनेके-लिये शोभित हो रही हैं— ॥ २ ॥

उभे समेतुं सुषमासमेता
विशोधितानन्तमनोनिशान्ता ।
सरस्वती व्यस्तसमस्तपापा
प्रकाशते तत्र परप्रतापा ॥ ३ ॥

यहाँपर गङ्गा और यमुनाको मिलनेकेलिये परम शोभावाली, अनेक मनोमन्दिरों को पवित्र करनेवाली समस्त पापोंको दूर करनेवाली और बड़े प्रतापवाली श्री सरस्वतीजी विराज रही हैं— ॥ ३ ॥

तत्रैव सा दीव्यति दिव्यशोभा
प्रयागनाम्नी त्रिजगत्प्रसिद्धा ।
सिद्धादिवासाहितपुण्यकीर्तिः
सुरासुराच्र्या सकलातिगा पूः ॥ ४ ॥

वहाँपर ही परम सुन्दर, सिद्धजनोंके निवाससे पवित्रकीर्तिवाला, पूजनीय, सर्वश्रेष्ठ और तीनोंलोकमें प्रसिद्ध प्रयागनामका नगर है ॥ ४ ॥

महार्घरत्नावलिरश्मिराशि-
विभूषितानि प्रतिभान्वितानि ।
गृहाणि यस्यामयुतानि मेरोः-
शिरः प्रमाणानि लसन्ति सन्ति ॥ ५ ॥

जिस नगरमें बहुमूल्यरत्नोंके किरणों से सुशोभित परमशोभायुक्त मेरुपर्वतके शिखरसमान ऊँचे-ऊँचे उत्तम गृह शोभा दे रहे थे ॥ ५ ॥

समस्तवेदार्थविचारपारा-
वारावगाहे कुशलाः सुशीलाः ।
स्वधर्मसंरक्षणजागरूका
यस्यां द्विजाग्र्याः पुरि यायजूकाः ॥ ६ ॥

जिस नगरमें सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ विचाररूप महासागरमें अवगाहन करनेवाले सुशील, स्वधर्मकी रक्षामें जागरित रहनेवाले और निरन्तर यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण निवास करते थे ॥ ६ ॥

स्वकीयसौन्दर्यमदप्रमोषी-
ण्यालोक्य यस्यां नरसुन्दरीणाम् ।
कलङ्कशून्यानि मुखारविन्दा-
न्यलज्जतालं सकलङ्क इन्दुः ॥ ७ ॥

जिस नगरमें अपने सौन्दर्यके अभिमानको अपहरण करनेवाले रमणीजनोंके निष्कलङ्क मुखारविन्द दर्शन करके कलङ्की चन्द्र लज्जित हो गया था ॥ ७ ॥

यस्यां हि घण्टापथपार्श्वमार्ग-
च्छायातरुश्रेणिषु संव्रजन्तः ।
पूषातितप्तांशुभिरप्यदृष्टा
जनाः प्रयासं न विजानते स्म ॥ ८ ॥

जिस नगरमें राजमार्गके पार्श्वमार्ग (पटरी) के ऊपर लगे हुए छायावाले वृक्षोंके नीचे-नीचे जानेवाले लोग सूर्यभगवान्‌के प्रखर किरणोंसे अस्पृष्ट होकर चलनेके श्रमको नहीं जानते थे ॥ ८ ॥

यस्यां मृगाङ्काश्मचयाश्रितेषु
मार्गेषु सर्वेषु कृतप्रयाणाः ।
मध्याह्नकाले न जना अवेयु-
स्त्विषाम्पतेर्दीधितिकर्कशत्वम् ॥ ९ ॥

जिस नगरमें चन्द्रकान्तमणियोंसे जड़े हुए समस्त मार्गोंपर मध्याह्न-कालमें भी चलनेवाले लोग सूर्यके किरणोंकी उष्णताको नहीं जानते थे । क्योंकि चन्द्रकान्तमणि तेजका प्रतिबन्धक है ॥ ९ ॥

सुकेशिनो गन्धसुवासिताङ्गाः
प्रफुल्लनेत्रा हसिताननाश्च ।
गृहीतवेत्रा धृतपुष्पमालाः
सदा युवानो व्यहरन्त यत्र ॥१०॥

जिस नगरमें सुन्दर केशोंवाले इत्र आदि सुगन्धित वस्तुओंसे सुगन्धित शरीरवाले, प्रसन्ननयन, प्रसन्नमुख, हाथमें छड़ी लिये हुए, पुष्पोंकी माला धारण किये हुए युवा पुरुष सर्वदा विलास करते थे ॥ १० ॥

यस्यां जना नाप्रजसो बभूवु-
र्दुर्मेधसो दुष्प्रजसोऽपि नो वा ।
अशक्तयो दुर्हृदया न चापि
नवाऽऽक्षरज्ञानविसारशून्याः ॥११॥

जिस नगरमें मनुष्य सन्तानहीन, दुष्टसन्तानवाले, दुर्बुद्धि, शक्तिहीन, और मूर्ख नहीं होते थे ॥ ११ ॥

यस्यां हि सायं गृहवाटिकासु
प्रफुल्लपुष्पानतगुल्मिनीषु ।
चन्द्राननानां रमणीजनानां
क्रीडाविनोदाधिरसाः प्रसस्रुः ॥१२॥

जिस नगरमें खिले हुए पुष्पोंसे झुकी हुई लतावाली गृहवाटिकाओंमें सायंकाल चन्द्रसमान मुखवाली रमणियोंके नानाप्रकारके विलासके सुन्दर रस झरते थे ॥ १२ ॥

प्रतिष्कशैर्यत्र पवित्रवृत्तै-
र्दिनान्तरम्येषु चतुष्पथेषु ।
श्यामाभिरामाणि गृहाणि दृष्ट्वा
जना मनोमोदमुपार्जिजन्त ॥१३॥

जिस नगरमें सायंकाल चौराहोंपर षोडशवार्षिकी नवयुवती स्त्रियोंसे भरे हुए गृहोंको देखकर लोग सदाचारी साथियोंके साथ अपने चित्तको अत्यन्त प्रसन्न करते थे ॥ १३ ॥

एलासिताभ्रक्रमुकादिवीटी
रसोल्लसद्वक्त्रसरोरुहाणाम् ।
यस्यां नराणां प्रतिनिष्कुटं सं-
जज्ञेहि सायं बहुलो विनोदः ॥१४॥

जिस नगरमें इलायची, कपूर, सोपारी आदिसे बने हुए पानके बीड़ाके रससे सुन्दर मुख कमलवाले पुरुषोंके प्रत्येक गृहोद्यानमें सायङ्काल अनेक विनोद होते थे ॥ १४ ॥

भागीरथीतीरसमाश्रितानां
यस्यां च सायं रमणीजनानाम् ।
मुखे गृहादागमनश्रमोत्था
अपः सुखं गन्धवहा अपीप्यन् ॥१५॥

जिस नगरमें सायङ्काल गङ्गाजीके किनारे बैठी हुई ललनाओंके मुखके ऊपरसे, घरसे आनेमें परिश्रमके कारण उत्पन्न हुए पसीनेको वायु सुखसे पान करते थे ॥१५॥

यत्र स्फुटं विष्णुपदीतटेषु
चन्द्रानना वीक्ष्य मुदा भ्रमन्तीः ।
तदङ्गसौगन्ध्यमदेन मत्त-
श्चीनांशुकं मारुत आचकर्ष ॥१६॥

जिस नगरमें गङ्गाके तटपर भ्रमण करती हुई चन्द्रसमान मुखवाली स्त्रियों को देखकर उनके अङ्गकी सुगन्धिके मदसे मत्त होकर वायु उनके सूक्ष्मवस्त्रोंको खींचता था ॥१६॥

यस्यां च सायं सरसीरुहास्या
आरुह्य नावो ललनाः सुकेश्यः ।
प्रफुल्लपद्मां तपनात्ययेऽपि
समादिशञ्शैवलिनीं सुराणाम् ॥१७॥

जिस नगरमें कमल समान मुखवाली, सुन्दर केशोंवाली सुन्दर स्त्रियाँ सायङ्काल नौकामें चढ़कर सूर्यके अस्त हो जानेपर भी श्रीगङ्गाजीको फूले

हुए कमलोंवाली बना देती थीं। उनके कमलसमान मुख लोगोंको सूर्यास्तमें भी विकसित कमलकी प्रतीति कराते थे ॥१७॥

समस्तकल्याणगुणाश्रितायाः
दिवं हसन्त्या बहुवैभवायाः।
यस्या नगर्या बहुमानवत्या
भाति स्म शीर्षण्य इव त्रिवेणी ॥१८॥

अनन्त कल्याण गुणोंवाली, बहुत वैभववाली, अतएव स्वर्गका भी तिरस्कार करनेवाली, अत्यन्त मानवाली जिस पुरीके सुन्दर केशके समान त्रिवेणी शोभती थी ॥१८॥

उपासितुं यत्र समेत्य सन्ध्ये
उभे सहस्राणि तटं पवित्रम्।
जह्नोः सुतायाः द्विजपुङ्गवानां
विरेजिरे प्राग्रहराणि नित्यम् ॥१९॥

जिस नगरमें श्रीगङ्गाजीके पवित्र तटपर आकर प्रातःकाल और सायङ्काल दोनों सन्ध्याओंकी उपासना करनेके लिये सहस्रों ब्राह्मण प्रतिदिन शोभा देते थे ॥१९॥

बभूव तस्यां पुरि सर्वलोक-
समर्चितश्चारुचरित्रशाली।
नाम्ना द्विजेन्द्रः सदनो धनेशो
विद्यानवद्याब्धिरपूर्वपुण्यः ॥२०॥

उसी नगरमें सर्वलोकोंसे पूजित, सच्चरित्र, सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार, सम्पत्तिशाली और परमधार्मिक श्रीपुण्यसदननामक एक ब्राह्मण थे ॥२०॥

विद्वत्तरा पद्वितरा च तस्य
विदांवरस्य प्रथिता सुशीला ।
नाम्ना सुशीलाऽतिपतिप्रिया स-
द्धार्यप्रमाणस्य बभूव भार्या ॥२१॥

सर्वश्रेष्ठधर्मपत्नीवाले और विद्वानोंमें श्रेष्ठ पुण्यसदनशर्माकी परम-विदुषी, परमनिपुण, मार्दवादिगुणोंसे प्रख्यात, पतिव्रता और सुन्दर शीलवाली सुशीला नामकी धर्मपत्नी थीं ॥२१॥

पूर्णेन्दुवक्त्रा च शिरीषमृद्वी
लज्जावती शीलवती सुतन्वी ।
श्यामा सुवर्णा शुभनासिका स-
द्देवादिपूजासु रतिं दधाना ॥२२॥

पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाली, शिरीषके समान कोमल, लज्जावती, शीलवती, तन्वी, तरुणी, सुन्दर नासिकावाली, देवादिकी पूजामें प्रेमवाली—॥२२॥

सम्मानिनी वेषवती च शुक्ल-
पटाभिलाषे मन आदधाना ।
हंसस्वना हंसवधूगतिस्सा
सुग्रीवयात्यन्तविशोभितासीत् ॥२३॥

मानवाली, सुन्दर वेषवाली, शुक्ल वस्त्र धारण करनेकी इच्छावाली, हंसके समान बोलनेवाली, हंसीके समान चलनेवाली वह सुशीला देवी अपनी सुन्दर ग्रीवासे शोभमान थीं ॥२३॥

प्रफुल्लपाथोजमनोहरास्यौ
मिथः सदा स्वाननवीक्षणेन ।

अवापतुः कामपि दम्पती तौ
मुदं मनोहारिचरित्रकान्तौ ॥२४॥

सुन्दर चरित्रसे मनोहर विकसित कमलसमानमुखवाले वे दोनों दम्पती एक दूसरेके मुखको देखकर अनिर्वचनीय आनन्दको प्राप्त होते थे ॥२४॥

भागीरथीतीरमुपेत्य नित्यं
मनः प्रसत्तिं परमां दधानः ।
त्रिकालसन्ध्यां महितामुपासा-
ञ्चक्रे समात्ताधिकसंयमः सः ॥२५॥

परमसंयमी श्रीपुण्यसदनशर्मा प्रसन्नमनसे श्रीगङ्गातटपर जाकर प्रतिदिन त्रिकालसन्ध्या करते थे ॥ २५ ॥

अथाधितायं च तनूनपातो
महोत्तमं यागगणं विधातुम् ।
अनाहिताग्नेर्नहि शास्त्रसिद्धो
यतोधिकारोस्ति तदुत्तरेषु ॥२६॥

विवाहानन्तर श्रीपुण्यसदनशर्माने बड़े-बड़े यज्ञोंके अनुष्ठानके लिये गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण इन तीन अग्नियोंका स्थापन किया; क्योंकि इनके विना अन्य यज्ञोंके अनुष्ठान करनेका शास्त्र अधिकार नहीं देते हैं ॥ २६ ॥

महाहिरण्यप्रचयादिसाध्याँ-
स्तेने वितानान्विततान् प्रवित्तः ।
द्विजाग्र्यवंशाधिविभूषणानां
नैसर्गिको ह्येष परार्ध्यधर्मः ॥२७॥

महासम्पत्तिशाली श्रीपुण्यसदनशर्माने पुष्कलद्रव्यव्ययकरके बड़े-बड़े यज्ञ किये। क्योंकि अत्युत्तम विद्वान् ब्राह्मणोंका यह सर्वोत्कृष्ट धर्म है ॥२७॥

देवाधिदेवान् सकलानयष्ट-
पितॄनताप्सींद्विविधोपचारैः।
श्रुतिप्रसिद्धाञ्छुभकर्मराशी-
न्राशीचकारायमनन्ततेजाः ॥२८॥

इस प्रकारसे श्रीपुण्यसदनशर्माने यज्ञद्वारा सब देवोंको सन्तुष्ट किया, नाना उपचारोंसे पितरोंको तृप्त किया और अनेक वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ २८ ॥

न तेऽर्थिनो भूतलराजराजा-
दस्माद्द्विजेन्द्रात्सुमनोमनीषात्।
आविष्कृतेच्छा बहुशो निजेच्छं
प्रपेदिरे ये न निजेष्टवित्तम् ॥२९॥

ऐसे कोई भी याचक नहीं थे जिन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की हो और महाविद्वान्, पृथिवीके कुबेरके समान श्रीपुण्यसदनशर्माके पाससे यथेच्छ इष्ट पुष्कल धन प्राप्त न किया हो ॥ २९ ॥

स सर्वशास्त्रार्थरहस्यवेत्ता
कृपारसव्याप्तमनस्सरस्कः।
कुलव्रतं नैजमहातुमिच्छन्
परोपकारान्न पराङ्मुखोऽभूत् ॥३०॥

समस्त शास्त्रोंके रहस्यके जाननेवाले कृपासे परिपूर्णहृदयवाले वह श्रीपुण्यसदनशर्मा परोपकाररूप अपने कौलिकव्रतका त्याग न करनेकी इच्छासे परोपकारसे कभी विमुख नहीं हुए ॥ ३० ॥

श्रीरामपादाम्बुजचञ्चरीकः
श्रुतिस्मृतिप्रोक्तपथैकपान्थः ।
स आर्यया स्वस्य सुभार्ययैव
निनाय कालान्सहितो द्विजेन्द्रः ॥३१॥

श्रीरामजीके चरणकमलके भ्रमरसमान, श्रुति और स्मृति द्वारा बोधित मार्गमें चलनेवाले वह श्रीपुण्यसदनशर्मा अपनी परम महनीय धर्मपत्नीके साथ काल व्यतीत करते थे ॥ ३१ ॥

पात्रेषु नित्यं द्रविणं वियन्तौ
धर्म्येषु कार्येषु सदाऽरमन्तौ ।
शनैःशनैःकालवशाज्जरन्तौ
न तौ तनूजाननमैक्षिषाताम् ॥३२॥

सत्पात्रोंको दान देते हुए, धर्मकार्योंमें सर्वदा तत्पर रहते हुए, और धीरे-धीरे कालवश आयुष्यके दिनोंको व्यतीत करते हुए उन दोनों (दम्पती)ने पुत्रके मुखको नहीं देखा अर्थात् उनको पुत्र न हुआ ॥३२॥

तौ स्वापतेयानि मनुष्यलोक-
प्राप्याणि लोकार्हणमप्यपूर्वम् ।
निकेतनानीह सुकेतनानि
प्रासीसदन्नैव सुतेन हीनौ ॥३३॥

मनुष्योंको प्राप्य सर्व धन, सर्वलोकद्वारा सत्कारप्राप्ति, सुन्दरध्वजवाले गृह यह सब दोनों दम्पतीको प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३३ ॥

पाथोजसङ्काशमनोहरास्यं
धन्यौ शयौ पद्मपदौ वहन्तीम् ।
क्रमेण वृत्तौ पृथुलौ सदूरू
स्मरेषुधी वोपनिधी दधानाम् ॥३४॥

सर्वश्रेष्ठ कमलसमान मनोहरमुखवाली, भाग्यशाली करकमल चरणोंवाली, कामदेवके धरोहर रखे हुए तूणीरके समान गोल और पुष्ट उरुवाली ॥ ३४ ॥

नितम्बबिम्बेन विराजमानां
घनेन पीनस्तनशोभमानाम् ।
रेखात्रयान्वीतशिरोधिमद्धा
बिम्बाधरां क्षामतरोदरीकाम् ॥३५॥

बृहत् नितम्बवाली, मोटे-मोटे स्तनवाली, तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवावाली, बिम्बफलके समान ओष्ठवाली और अत्यन्त कृश उदर वाली ॥३५॥

नेत्राब्जनालद्युतिमाजुषाणां नासां
लसत्स्वच्छकपोलपालीम् ।
भ्रुवोर्युगं मन्मथचापशोभं
भृङ्गभ्रमोत्पादिकचान्दधानाम् ॥३६॥

नेत्ररूपकमलोंके नालदण्डके समान नासिकावाली, स्वच्छ कपोलोंवाली, कामदेवके धनुषसमान भौंहोंवाली, भ्रमरके समान काले केशोंवाली ॥ ३६ ॥

प्रियां सुशीलां समुपेत्य विप्र-
श्रेष्ठः समो देवगुरोर्मनीषी ।
पुत्राजनिक्लेशविषण्णचेता
उवाच तां वाचमथैकदेति ॥३७॥

अपनी प्रिया सुशीलाके पास जाकर बृहस्पतिसमान परम विद्वान् श्रीपुण्यसदनशर्मा पुत्र न होनेके दुःखसे दुःखी होकर एक दिन इस प्रकार बोलने लगे ॥ ३७ ॥

प्रिये प्रयातोऽस्ति वयोऽर्धभागः
परं सुतालिङ्गनजं सुखं नौ।
जातं न तस्माद्विषमो विषादः
प्रसादसस्याङ्कुरमुच्छिनत्ति ॥ ३८ ॥

हे प्रिये! आयुका आधा भाग बीत गया है परन्तु हम लोगोंको पुत्र के आलिङ्गन करनेका सुख नहीं मिला। अतः यह चिन्ता प्रसन्नतारूप सस्यके अङ्कुरका मूलोच्छेद कर रही है ॥ ३८ ॥

प्रिये भवेदात्मजमन्तरेण
प्रयाणमस्माद्यदि मर्त्यलोकात्।
विचारयावामृणिनौ कठोरा-
त्कथं विमुञ्चेव कृतान्तपाशात् ॥३९॥

हे प्रिये! यदि पुत्रके बिनाही हम लोग इस संसारसे चले जावेंगे तो ऋणी होनेसे यमराजके पाशसे कैसे छूट सकेंगे ॥ ३९ ॥

तृषातुरास्ते पितरो मदीयाः
प्रिये कथङ्कारमितः प्रयाते।
तर्प्स्यन्ति मय्यस्तजगन्निवासे
दुःखाकरोतीयमतीव चिन्ता ॥४०॥

मैं जब अपने दिन पूरा करके यहाँसे उठ जाऊँगा तो तृषासे व्याकुल मेरे पितर कैसे तृप्त होंगे यह चिन्ता मुझे बहुत दुःख देती है ॥ ४० ॥

अजातपुत्रस्य मृतस्य को मे
संप्रार्थयिष्यत्यथ वंशमीड्यम्।
उदारवंशस्य विधेर्विधाना-
दहो भविष्यामि विलोपकोऽहम् ॥४१॥

पुत्र विनाही मेरे मरनेपर मेरे वंशका नाम कौन लेगा ! अहा ! भाग्यवश मैं अपने प्रशस्त कुलका लोप करनेवाला हो जाऊँगा ॥ ४१ ॥

निपीय वाचं स्वपतेः सुचारुं
क्षणं विचार्यार्यतमा सुशीला ।
विनम्रभावेण विनिःश्वसन्ती
पतिव्रता सा गिरमाजहार ॥४२॥

पतिव्रता अत एव परमश्रेष्ठ वह सुशीलादेवी अपने पतिके सुन्दर वचनामृतका पान करके, क्षणभर विचार करके लम्बी साँस लेती हुई अत्यन्त नम्रभावसे बोलीं ॥ ४२ ॥

तथ्यं हि तत्प्राणपते यदुक्तं
परं विधित्सां भगवद्विधातुः ।
अनल्पशक्तेः परमाल्पशक्ति-
र्जनः कथं स्यात्परिहर्तुमर्हः ॥४३॥

हे प्राणनाथ ! आपने जो कहा, वह सत्य है। परन्तु अनन्त शक्तिवाले भगवान् विधाताकी चिकीर्षाको अल्पशक्तिवाला मानव किस प्रकारसे हटा सकता है ॥ ४३ ॥

जन्मस्वनेकेषु कृतानि तानि
पुण्यानि पापानि सदा फलन्ति ।
विचार्य्य भूयो हृदयेश्वर त्वं
जहीहि चिन्तां विफलामनिन्द्य ॥४४॥

तथा जन्मान्तरके किये हुए पुण्य और पाप भी सदा फलते हैं। हे निष्कलङ्क ! हृदयेश्वर ! अत्यन्त विचारकर व्यर्थ चिन्ताको आप छोड़ दें ॥४४॥

श्रेयस्करीं भक्तिमनन्तशक्ति-
स्फूर्जत्प्रभाभास्वरविष्णुपादे ।
अनन्यचेतस्कतयाशु नाथ
शास्त्रीयमार्गेण समाचराव ॥४५॥

किंच हे नाथ ! अनन्त-शक्ति-सम्पन्न परमतेजस्वी भगवान् रामके चरणकमल में हम लोग अनन्यमनस्क होकर शास्त्रोक्तमार्गद्वारा शीघ्र श्रेयस्करी भक्ति करें ॥ ४५ ॥

सर्वान्तरात्मा पुरुषोत्तमोऽसौ
कृपासुधाब्धी रघुपुङ्गवेन्द्र ।
अनन्यभक्त्या जगदीश्वरो नौ
पूर्णामपेक्षां वितनिष्यतीह ॥४६॥

सबके अन्तरात्मा, कृपासागर, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अनन्यभक्तिसे हम लोगोंको पूर्णकाम बनादेंगे ॥ ४६ ॥

प्राणप्रियायाः स निशम्य वाचं
सन्तोषणीं चारुविचारगर्भाम् ।
तुतोष तोकागमदत्तचेता
नेष्टो भवेत्कस्य निजेष्टमार्गः ॥४७॥

पुत्रकी इच्छावाले श्रीपुण्यसदनशर्मा प्राणप्रिया सुशीलाकी सुन्दर विचारवाली वाणीको सुनकर सन्तुष्ट हो गये। क्योंकि अपना इष्ट मार्ग किसको प्रिय नहीं होता है ? ॥ ४७ ॥

तस्यां नगर्यामुपगङ्गमेकं
मनोज्ञमासीद्रघुपुङ्गवस्य ।
अभिष्टुतं मन्दिरमन्तरिक्ष-
वलत्पताकं महितोरुकीर्तिः ॥ ४८ ॥

उस प्रयागनगरमें गङ्गाजीके समीप सुन्दर, प्रख्यात और आकाशमें जिसकी पताका लहरा रही थी ऐसा श्रीरामजीका एक मन्दिर था ॥४८॥

विष्णुं समाराद्धुमसौ सभार्यः
प्रपूर्णकामः सुतसूतिकामी ।
ययौ स्थिरश्रद्ध उदात्तभाव-
स्तन्मन्दिरं भूमिसुराग्रगण्यः ॥ ४९ ॥

पुत्रसे अतिरिक्त जिनकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, अतएव केवल पुत्रकी इच्छावाले, स्थिर श्रद्धावाले, उच्च भावनावाले, तथा सर्वब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रीपुण्यसदनशर्मा अपनी धर्मपत्नी सहित विष्णुकी आराधना करनेके लिये उस श्रीराममन्दिरमें गये ॥ ४९ ॥

रामालयं दूरत एव दृष्ट्वा-
प्रणेमतुस्तौ सहसा प्रसन्नौ ।
रामागमाचारपरायणानां-
यतः प्रसिद्धो निजधर्म एषः ॥५० ॥

उन दोनों दम्पतीने दूरसे ही श्रीराममन्दिरको देखकर प्रणाम किया। क्योंकि वैष्णवागमके अनुकूल आचरण करनेवालोंका यह स्वधर्म है ॥५०॥

अनन्तरं पूर्वमनिन्द्यकीर्तौ
सुरस्रवन्तीतटमीयतुस्तौ ।
आचम्य पादौ च विशोध्य दिव्य-
मानिन्यतुर्दृष्टिपथं रमेशम् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर उत्तम कीर्तिवाले वह दोनों दम्पती प्रथम श्रीगङ्गाजीके तटपर गये । वहाँ आचमन तथा पादप्रक्षालन करके मन्दिरमें उन्होंने भगवान्‌का दर्शन किया ॥ ५१ ॥

प्रणम्य साष्टाङ्गमुभौ प्रसन्नौ
श्री जानकी प्राणपतिं सुतेच्छौ ।
प्रेम्णा स्थितौ तत्पुर आरभेतां
स्तोतुं तदाज्ञामधिगन्तुकामौ ॥ ५२ ॥

दर्शन के अनन्तर दोनों दम्पती भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम करके, सम्मुख खड़े होकर उनकी आज्ञा ग्रहण करनेके लिये स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥

हे नाथ हे सर्वग सर्वपाल
सर्वान्तरात्मज्ञ कृपानिधान ।
समादिशावां परिषेवितुं ते
मनोरथानां प्रददे पदाब्जे ॥ ५३ ॥

हे नाथ ! हे सर्वव्यापक ! हे सर्वरक्षक ! हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे कृपासागर ! समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले आपके चरणोंकी सेवा करनेकी हम दोनोंको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥

निलिम्पनद्याः सलिलेषु नित्यं
सायं प्रगे तावतिमात्रपूतौ ।
स्नात्वा हरेः पङ्कजपादयुग्मं
मुदा समानर्चतुरर्हणार्हम् ॥ ५४ ॥

अत्यन्त पवित्र दोनों दम्पती प्रतिदिन गङ्गाजीमें सायङ्काल और प्रातःकाल स्नान करके भगवान्‌के परम पूजनीय चरणारविन्दकी पूजा करते थे ॥ ५४ ॥

श्रीराममन्त्रं मनसा जपन्तौ
श्रीरामचन्द्रं वचसा गृणन्तौ ।
जायापती दीप्तमती प्रदीप्ता-
वेकाशनौ मूलफलाशनौ तौ ॥ ५५ ॥

संक्लेशयन्तौ तपसा शिरीष-
मृद्वीं तनुं तत्कृशतां व्रजन्तौ ।
सद्ब्रह्मवर्चः परिवर्धयन्तौ
कालान्बहून्निन्यतुरेकनिष्ठौ ॥ ५६ ॥

मनसे श्रीराममन्त्रको जपते हुए, वाणीसे श्रीरामचन्द्रकी स्तुति करते हुए, एक समय आहार करनेवाले, मूल, फल आदि भोजन करनेवाले अतएव जागरित बुद्धिवाले, शिरीषसमान मृदु शरीरको तपस्या से क्लेश पहुँचाते हुए, अत्यन्त दुर्बलताको प्राप्त होते हुए तथा ब्रह्मतेजको बढ़ाते हुए उन दोनों (दम्पती) ने वहाँ बहुत काल व्यतीत किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अनन्तकारुण्यमहासमुद्रः
परात्परः श्रीभगवान्रमेशः ।
नीलाम्बुजश्याममनोहराभो
विभुः सहस्रांशुसहस्रतेजाः ॥५७॥

निकाममालोक्य तयोः परार्ध्यां
भक्तिप्रियो भक्तितरङ्गिणीं ताम् ।
अनुग्रहीतुं क्षितिमण्डनौ तौ
प्रादुर्बभूवार्तजनाधिबन्धुः ॥५८॥

अनन्यदयाके महासागर, नीलकमलसमान श्याम और अत्यन्त मनोहर अङ्गवाले, सहस्रों सूर्यके समान तेजवाले, दीनबन्धु, परात्पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दोनोंकी अत्युत्तम भक्तिरूप नदीको अच्छे प्रकार देखकर भूमण्डलको कृतार्थ करनेके लिये प्रादुर्भूत हुए ॥५७॥ ॥५८॥

प्रपन्नकल्पद्रुममाशुतोषं
भक्त्येकलभ्यं जगतीपतिं तम् ।

पुरो निरीक्ष्याशु समुत्थितौ ता-
वमन्दहर्षेण समस्तुवाताम् ॥५९॥

प्रपन्नोंके लिये कल्पवृक्ष समान, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भक्तिमात्रसे प्राप्त करने योग्य, त्रिलोकीनाथको अपने सन्मुख उपस्थित देखकर दोनों दम्पती अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे ॥५९॥

हे दीनबन्धो करुणैकसिन्धो
हे भक्ततापापनुद प्रवीर।
जगद्गुरोऽकिञ्चनदासयोर्ना-
वेषोञ्जलिः स्वीक्रियतामनन्त ! ॥६०॥

हे दीनबन्धु ! हे करुणाके एकमात्रसागर ! हे भक्तभयभञ्जन ! हे प्रकृष्टवीर ! हे जगद्गुरो ! हे अनन्त ! हम दोनों निर्धन दासोंकी प्रार्थनाको स्वीकार करिये ॥६०॥

कृतार्थतां स्वीकुरुते पदाब्जं
निषेवमाणं पुरुषं हि यस्य।
देवाधिदेवार्चितपादुकाय
तस्मै नमो दीनहिताय तुभ्यम् ॥६१॥

जिसके कमलचरणकी सेवा करनेवाला पुरुष अवश्य कृतार्थ हो जाता है, देवोंके भी देवोंसे पूजी गयी है चरणपादुका जिसकी ऐसे हे दीनबन्धु आपको नमस्कार हो ॥६१॥

किं नाथ तेऽग्रे विनिवेदयाव:
किं तन्न यत्ते विदितं विभो स्यात्।
मनोरथं नौ हृदयस्थितं त्वं
सर्वं विजानासि जगच्छरीर ॥६२॥

हे नाथ ! आपके सामने हम क्या निवेदन करें। वह कौन-सी वस्तु है जिसे आप नहीं जानते हैं। सर्वव्यापी प्रभो ! हमारे मनोरथको पूर्ण करिये ॥६२॥

उदीर्य वाचं गलितान्तराप-
द्राशो इतीमां सजलेक्षणाब्जौ ।
अनेकजन्मार्जितपुण्यलभ्य-
पादाब्जयोस्तस्य निपेततुस्तौ ॥६३॥

आन्तरिक दोषोंसे शून्य दम्पतीने इस प्रकारकी वाणी बोलकर रोते हुए, अनेक जन्मों के उपार्जित पुण्योंसे प्राप्तव्य कमलनयन भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया ॥६३॥

प्रह्लादसुग्रीवबिभीषणाद्या-
न्ध्रुवं गजं येन ररक्ष पूर्वम् ।
तेनैव हस्तेन दयाश्रितेन
व्युत्थाप्य चाश्लिष्य स तौजगाद ॥६४॥

जिन हाथोंसे प्रह्लाद, सुग्रीव, बिभीषण, ध्रुव और गजकी रक्षा की थी, उन्हीं कृपामय हस्तोंसे दोनों पतिपत्नीको उठाकर, छातीसे लगाकर भगवान् बोले ॥६४॥

अहं प्रसन्नोस्म्यनया सुभक्त्या
वत्सौ विषादं हृदि मा कृषाथाम् ।
अहं सुतत्वं स्वयमेव यास्यन्
प्रपूरयिष्यामि मनोरथं वाम् ॥६५॥

हे वत्स ! मैं तुम दोनोंकी इस सुन्दर भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। तुम लोग चिन्ता मत करो। मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करूँगा ॥६५॥

असौ महात्मा गतमानसाधि-
गृहं प्रतीयाय तदा सदारः।
तपःश्रमापन्नशरीरकार्श्यं
शनैः शनैर्निर्गमयाम्बभूव ॥६६॥

भगवान्‌के दर्शन होनेके अनन्तर प्रसन्न होकर महात्मा श्रीपुण्यसदन अपनी पत्नीके सहित घर लौट आये और तपके श्रमसे पैदा हुई शरीर-कृशताको धीरे-धीरे दूर कर दिया ॥६६॥

उपचितघनदर्पभ्रष्टबुद्धिप्रसार-
प्रसृततिमिरभाराक्रान्तलोकान् विनेतुम्।
अथ सदनरमण्यां वैष्णवं जिष्णु तेजः,
सपदि समितमीदृक् किं तपो न प्रसूते ॥६७॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीभगवद्-दाचार्य्य–विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये द्वितीयः सर्गः।

गृहपर आनेके पश्चात्, बढ़े हुए अत्यन्त अभिमानसे भ्रष्टबुद्धि होनेके कारण अज्ञानरूप अन्धकारके भारसे पीड़ित लोगोंको शिक्षा देनेके लिये श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी सुशीलादेवीके गर्भमें विजयी वैष्णव तेज शीघ्र आकर प्राप्त हुआ। क्योंकि ऐसा तप क्या नहीं करता है? अर्थात् सब कुछ करता है ॥६७॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामि-श्रीभगवदाचार्य–विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये स्वोपज्ञवैजयन्त्याख्यव्याख्यायां द्वितीयः सर्गः।

अथ तृतीयः सर्गः

अथ त्रिलोकीपतिमात्मयोनिं
दधार गर्भे सुभगा सुशीला ।
यदा तदाऽलौकिकभाप्रदीप्ता-
ननाभवद्भाग्यवदग्रगण्या ॥ १ ॥

स्वयंभू त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीरामजीको श्रीरामानन्दके रूपमें सुशीलादेवीने जब गर्भमें धारण किया तब उनका मुख अलौकिक कान्तिसे देदीप्यमान हो गया ॥ १ ॥

गर्भेण तेनेयमहीनकान्तिः
सती सुशीला शुशुभे समन्तात् ।
मुक्ताफलेनेव सुमृष्टशुक्तिः
पञ्चाननेनाद्रिगुहेव दृश्या ॥ २ ॥

पूर्णकान्तिवाली सुशीलादेवी इस गर्भसे ऐसी शोभा पाने लगीं जैसे कि मुक्ताफलसे सुन्दरशुक्ति अथवा सिंहसे दर्शनीय गुहा शोभती है ॥ २ ॥

सुवर्णवर्णातिमनोज्ञरूपा
प्रशस्यशीला विमला सुशीला ।
शनैः स्वगर्भोपचयक्रमेण
बभूव सा पाण्डुतयोपपन्ना ॥ ३ ॥

गौरवर्णवाली, परम मनोहर रूपवाली, सुन्दर शीलवाली, निर्मला सुशीलादेवी शनैः-शनैः गर्भकी वृद्धिके क्रमसे पाण्डुतासे युक्त हुई ॥ ३ ॥

तस्या अभूतां शिवशातकुम्भो-
पमौ वृद्धतरावुरोजौ ।

स्तन्यस्य पाता भवितावयोर्हि
त्रैलोक्यपातेतिमुदेव नूनम् ॥ ४ ॥

निश्चयही हम दोनोंके दूधको पीनेवाले त्रिलोकीनाथ होंगे इसी प्रसन्नतासे सुशीलादेवीके सुन्दर सुवर्ण-कलश समान दोनों स्तन अत्यन्त पीन–मोटे हो गये ॥ ४ ॥

प्रफुल्लपाथोजविलोचनाया
विलोचने ईयतुरायतत्त्वम् ।
विशेषतः श्रीभगवन्मुखारविन्द-
श्रियं द्रष्टुमिवोत्सुके ते ॥ ५ ॥

खिले हुए कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रवाली सुशीलादेवीके नेत्र मानों श्रीभगवान्के मुखारविन्दकी शोभा देखनेके लिये उत्कण्ठित होकर विशेष दीर्घताको प्राप्त हो गये ॥ ५ ॥

लावण्यसञ्जीवननिर्झरिण्या-
स्तस्या हि सौभाग्यजुषो रमण्याः ।
नितम्बबिम्बं ववृधे तटिन्या-
स्तटं यथा वारिधरागमान्ते ॥ ६ ॥

जैसे वर्षा होजानेके बाद नदीके तट बढ़ जाते हैं, वैसे ही परम सुन्दरी सौभाग्यवती श्री सुशीलादेवीके नितम्ब बढ़ गये ॥ ६ ॥

सर्वाङ्गसौन्दर्यसरित्प्रवाह-
देदीप्यमानापघनाननायाः ।
एकान्तमास्फातिमिता मुखश्री-
र्यथोषसि प्राज्ञतमस्य बुद्धिः ॥ ७ ॥

जैसे ब्राह्म मुहूर्तमें प्राज्ञतम पुरुषकी बुद्धि वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसे ही सर्वाङ्गसौन्दर्यरूपसरित्‌के प्रवाहसे सुशोभित कर, चरण और मुखवाली सुशीलादेवीके मुखकी शोभा अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥

जगत्त्रयैकामितसारभारं
गर्भे वहन्ती चिखिदे न देवी ।
सर्वान्तरात्मानुनिविष्टपूर्ण-
श्रीब्रह्मणो ह्येष परः प्रभावः ॥ ८ ॥

त्रिलोकीके अमितसार-श्रीभगवान्‌के भारको गर्भमें धारण करती हुई श्रीसुशीला देवी खिन्न नहीं हुई। सबके अन्तरात्मामें अनुप्रविष्ट पूर्ण ब्रह्म श्रीरामजीका ही यह सर्वोत्कृष्ट अलौकिक प्रभाव है। नहीं तो अखिलभुवनके भारको वहन करनेवाले भगवान्‌के भारको वह कैसे धारण कर सकतीं ? ॥ ८ ॥

स्वाभाविकी मन्दगती रमण्या-
स्तस्यास्तदा मन्दतरा बभूव ।
सर्वं कुलीनं सुफलैर्विनम्रं
भवत्यजस्रं यदयं स्वभावः ॥ ९ ॥

सुशीला देवीकी स्वाभाविकमन्दगति विशेष मन्द हो गयी। यह स्वभाव है कि कुलीन सभी ही सुन्दरफलकी प्राप्ति से सदा नम्र हो जाते हैं ॥ ९ ॥

दिने दिने सम्मदवर्धनानि
भाविप्रियावेदनपण्डितानि ।
निमित्तजातानि सुमङ्गलानि
तस्या विदुष्याः प्रकटीबभूवुः ॥ १० ॥

प्रतिदिन विदुषी सुशीलादेवीके आनन्दको बढ़ानेवाले, भाविप्रियकी सूचना देनेवाले मङ्गलमय शकुन होने लग गये ॥ १० ॥

समागतास्तत्र निमित्तविज्ञा
विज्ञा अनेके युगपत्समेताः ।
विनीतभावेन कृतप्रणामा
निवेदयाञ्चक्रुरमी अमूदृक् ॥११॥

उस प्रयागनगरमें बहुतसे ज्योतिःशास्त्रके विद्वान् एकही साथ मिलकर वहाँ आये और नम्रभाव से प्रणाम करके निम्नोक्त प्रकारसे बोलने लगे ॥ ११ ॥

हे देवि सच्छास्त्रकलाप्रवीणो
मोहान्धजम्बालनिपीडितस्य ।
पुत्रो धुरं धर्मरथस्य धर्ता
महाप्रभावो भविता तवेति ॥१२॥

हे देवि ! सम्पूर्ण शास्त्रों और योगादिकी क्रियाओंमें निपुण अज्ञानान्धकाररूप पङ्कमें फँसे हुए धर्मरथका धारण करनेवाला, महाप्रतापी पुत्र शीघ्र ही तुमको प्राप्त होगा ॥ १२ ॥

गुरुर्गुरूणां महसां सुधाम
धीरः प्रवीरो दृढनिश्चयश्च ।
समस्तकल्याणगुणालयस्ते
पुत्रो भवेच्छ्रीपतितुल्य एव ॥१३॥

हे देवि ! तुम्हारा पुत्र गुरुओंका भी गुरु, सम्पूर्णतेजोंका सुन्दर स्थान, महान् वीर, दृढनिश्चयवाला तथा विष्णुभगवान्‌के समान ही समस्तकल्याणगुणोंसे युक्त होगा ॥ १३ ॥

आबालवृद्धोद्वहनीयशास्तिः
पुण्यैकधामाथ सुरेशतेजाः ।
जगत्त्रयानन्दविधायकस्ते
भवेत्तनूजोऽतनुशक्तिशाली ॥१४॥

आबालवृद्ध जिसकी आज्ञाका पालन करेंगे, परमपुण्यात्मा, इन्द्र-समान तेजस्वी, महाशक्तिसम्पन्न अतएव तीनों लोकोंको आनन्द देनेवाला तुम्हारा पुत्र होगा ॥ १४ ॥

अज्ञानभूसन्तमसाधिवृद्ध्या-
च्छन्नं समस्तं जगदार्तबन्धुः ।
उद्योतयिष्यत्यनघस्तनूजः
क्षणेन भासां पतिरेष देवि ॥१५॥

आर्तबन्धु, परमतेजस्वी और निष्पाप यह तुम्हारा पुत्र क्षणभरमें अज्ञानान्धकारसे परिपूर्ण समस्त जगत्‌को प्रकाशयुक्त कर देगा ॥ १५ ॥

अनन्तकालं भुवि ते प्रतिष्ठा
प्रशस्यवंशस्य तवाङ्गजेन ।
समग्रतेजोऽतिशयप्रपूर्ण-
पात्रेण संस्थास्यत एव देवि ॥१६॥

हे देवि ! सम्पूर्ण तेजोंकी अधिकतासे पूर्णपात्ररूप तुम्हारे पुत्रके द्वारा तुम्हारे प्रतिष्ठितवंशकी प्रतिष्ठा इस भूतलपर अनन्तकालपर्यन्त स्थिर रहेगी ॥ १६ ॥

संसारकान्तारदुरूहमार्ग-
भ्रमिव्यथाव्याकुलितान्तराणाम् ।

तापत्रयीसंयमनाख्यकर्म-
दक्षोऽङ्गजस्ते भविता नराणाम् ॥१७॥

संसाररूप घोर जङ्गलके कठिनमार्गमें भ्रमणकी व्यथासे व्याकुल मनवाले मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों तापोंके दूरीकरणस्वरूप कर्ममें कुशल तुम्हारा पुत्र होगा ॥ १७ ॥

कदापि केनापि न ते तनूजो
धृष्यो भवेद्दिव्यगुणः सुशीले ।
न केवलं मानवदेहभृद्भिः
सुरैरपि श्रेष्ठतमैश्च पूज्यः ॥१८॥

हे सुशीलादेवि ! केवल मनुष्योंका नहीं प्रत्युत इन्द्रादिदेवोंका भी पूज्य तुम्हारा पुत्र कभी किसीसे पराभव नहीं पावेगा ॥ १८ ॥

तेजस्विनां देवि असौ परेषां
तेजोनिपाता भविता तनूजः ।
जगज्जगन्नाथ इवेह सम्यङ्-
नियन्त्रयिष्यत्यखिलं सलीलम् ॥१९॥

हे देवी ! आपका यह पुत्र शत्रुओंके तेजका नाश करनेवाला होगा। तथा जैसे परमेश्वर सम्पूर्णजगत्का नियमन करते हैं, वैसे ही आपका पुत्र भी अनायास समस्तजगत्को नियममें चलावेगा ॥ १९ ॥

आकर्ण्य दैवज्ञगिरः सुशीला
मुदं परामापदनिन्द्यशीला ।
श्रीपुण्यसद्मापि निजं तनूजं
गुणावदातं मुमुदे निशम्य ॥ २० ॥

परमोत्तमशीलवाली श्रीसुशीलादेवी ज्योतिषियोंके वचनको सुनकर परमहर्षको प्राप्त हुई। तथा श्रीपुण्यसदनशर्मा भी अपने भावी पुत्रको उत्तम गुणोंवाला सुनकर प्रसन्न हुए ॥ २० ॥

यथा यथा गर्भ इयाय वृद्धिं
तथालसा सा नितरां बभूव।
प्रसूनमालापि भराय जाता
तस्याः कथा कान्यविभूषणानाम्॥२१॥

ज्यो-ज्यों गर्भ बढ़ता गया, त्यों-त्यों सुशीलादेवी अलसाती गयीं। उनको पुष्पोंकी माला भी भाररूप हो गयी तो अन्य आभूषणोंकी तो वार्ता ही क्या कहनी थी ॥ २१ ॥

प्रियंवदायाः समजायतैव
कालोचितं दोहदमिन्दुमुख्याः।
नैसर्गिकं वस्तु निसर्गतो हि
काले भवत्येव किमत्र चित्रम् ॥२२॥

मधुरभाषिणी चन्द्रमुखी सुशीलादेवीको समयोचित दोहद-गर्भ समयकी इच्छा उत्पन्न हुई। क्योंकि स्वाभाविक वस्तु स्वभावतः अपने समयपर होती ही है, इसमें क्या आश्चर्य है ॥ २२ ॥

यद्यत्प्रियं वस्तु मनीषितं स्या-
दानीतमेवाभवदाशु तस्याः।
पत्या विलम्बं न हि कोऽपि सोढुं-
क्षमः प्रिये कर्मणि वल्लभानाम् ॥२३॥

श्रीसुशीलादेवीको जिस जिस प्रियवस्तुकी इच्छा होती उसे श्रीपुण्य-सदन शीघ्रही मँगा लिया करते थे; क्योंकि स्वप्रियजनोंके प्रियकार्यमें कोई भी विलम्ब सहन नहीं कर सकता ॥ २३ ॥

निःशेषवस्त्वीश्वरमावहन्त्या
विश्रुत्य तं दोहदखेदमस्याः ।
आदाय नानाविधवस्तुजातं
समाययुर्बन्धुजनाः स्वभावात् ॥२४॥

समस्तवस्तुओंके ईश्वर भगवान् श्रीरामको श्रीरामानन्दरूपसे गर्भमें धारण करती हुई सुशीलादेवीके दोहद—खेदको सुनकर बन्धुजन स्वभावतः नाना प्रकारकी वस्तुओंको लेकर उपस्थित हुए ॥ २४ ॥

निद्रादरिद्राम्बुरुहानना सा
कठोरगर्भा निशि जातनिद्रा ।
ददर्श बालं विहरन्तमद्धा
पुरो धनुष्पाणिमनिन्द्यरूपम् ॥ २५ ॥

चार श्लोकोंमें सुशीलादेवीका स्वप्नदर्शन वर्णन करते हैं। परिपूर्ण-गर्भवाली, विकसितकमलसमानमुखवाली, श्रीसुशीलादेवीने रातको सोती हुई स्वप्नमें अपने आगे हाथमें धनुष्बाण लेकर खेलते हुए एक परम सुन्दर बालकको देखा ॥ २५ ॥

विद्याधराणां वनितासखानां
गणैरपश्यद्वनिता द्विजस्य ।
बालं तमानन्दनिधिं मनोज्ञं
सा स्नप्यमानं सलिलैः सुगन्धैः ॥२६॥

श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी श्रीसुशीलादेवीने आनन्दनिधि उस सुन्दर-बालकको विद्याधर और उनकी स्त्रियोंके द्वारा सुगन्धितजलसे स्नान कराये जाते हुए देखा ॥ २६ ॥

इन्द्रादिदेवैः सकलैः सदारैः
सुगन्धिपुष्पोपहितैः स्वहस्तैः ।
समर्च्यमानं बहुधा तनूज-
मपश्यदार्य्या सदनस्य भार्या ॥२७॥

श्रीसुशीलादेवीने स्वस्वस्त्रियों सहित इन्द्रादिदेवोंको हाथोंमें सुगन्धित पुष्पोंको लेकर अपने पुत्रकी पूजा करते हुए देखा ॥ २७ ॥

अनन्तरत्नांशुविसारिशोभा-
प्रयुक्तचेतोहरतां दधाने ।
सिंहासनेऽदर्शदसौ सुबालं
निवेश्यमानं ससुरेण वृष्णा ॥ २८ ॥

सम्पूर्णदेवसहित इन्द्रके द्वारा अनन्तरत्नोंके किरणोंकी शोभासे परम-मनोहर सिंहासनपर बैठाये जाते हुए उस बालकको सुशीलादेवीने देखा ॥ २८ ॥

मुहुर्मुहुः संसृतिजन्यदुःखे
नृणां निपाताय कृतप्रतिज्ञान् ।
एकान्ततो धर्मधुरीणभार्या
तत्याज सा वैषयिकान् पदार्थान् ॥२९॥

परमधार्मिक श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी सुशीलादेवीने जन्म और मरणके दुःखमें पुनः पुनः मनुष्योंको गिरानेवाले वैषयिकपदार्थोंका सर्वथा त्याग कर दिया ॥ २९ ॥

तस्या मनोवृत्तय आत्मनीनाः
स्वभावतः सत्त्वगुणेषु लीनाः ।
सन्तिष्ठमाने जगदेकनाथे
गर्भे कथं स्यान्मलिनावतारः ॥३०॥

श्रीसुशीलादेवीको आत्महितकारिणी मनोवृत्तियाँ स्वभावतः सत्त्वगुणमें लीन हो गयीं। गर्भमें परमसात्त्विक भगवान्के निवास करते हुए अन्य मलिनभावका प्रवेश कैसे हो सकता ! ॥ ३० ॥

त्यक्त्वा समस्तामुपभोगयोग्यां
श्रियं मदीयस्तनयो विरक्तः।
भविष्यतीत्येवमवेक्ष्य जाता
सर्वेषु-भोगेष्विव सा विरक्ता ॥३१॥

'मेरा पुत्र उपभोगके योग्य समस्त वैभवका परित्याग करके विरक्त होगा' मानो ऐसा मानकर ही श्रीसुशीलादेवी सब भोगोंसे विरक्ता हो गयीं ॥ ३१ ॥

वैमानिकाद्या अमराः समीयु-
र्विज्ञाय विष्णोर्जगदुद्दिधीर्षोः।
पुनर्धरित्र्यामवतारकालं
लोकानुकम्पाकलितं समीपम् ॥३२॥

पृथ्वीपर पुनः अवतार लेकर लोकोद्धारकी इच्छावाले, श्रीरामजीके अवतारका समय समीप जानकर वैमानिक आदि देवता वहाँ आये ॥३२॥

आयोजनं देवगणैः सहस्रैः-
स्तम्भैर्युतं रत्नचयावदातैः।
अरिष्टमच्छच्छवि निर्ममे तै-
र्यथा द्वितीयं पुरुहूतधाम ॥३३॥

उन देवताओंने एक योजन पर्यन्त सुन्दर रत्नोंसे सुशोभित सहस्रों-स्तम्भोंसे युक्त दूसरी इन्द्रपुरीके समान अत्यन्तसुन्दर प्रसूतिकागृहका निर्माण किया ॥ ३३ ॥

रसेषुकालेन्दुयुते प्रतापि-
श्रीविक्रमाब्दे तपसोऽसितस्य।
पक्षस्य शोभातिशयेन जुष्टे
तिथौ शुभायां रविदेवताके ॥३४॥

श्रीविक्रम संवत् १३५६ के माघ मास कृष्णपक्षकी वह परम सुन्दर सप्तमी तिथि थी जिसमें—॥ ३४ ॥

रवौ धनुष्ठे च शनौ तुलास्थे
चन्द्रे तथा कोणगते बुधे च।
केन्द्रे गुरौ दैत्यगुरौ च राहौ
मेषस्थिते भूमिसुते तथैव ॥३५॥
कुम्भे च लग्नेऽथ च सिद्धयोगे
रवावुदीते किल सप्तदण्डे।
त्वाष्ट्रे च ऋक्षे जगतामधीशः
सुशीलयासावि सुखेन सूनुः ॥३६॥

जब सूर्य धनराशिमें था, शनि और चन्द्र तुलाराशिमें थे, बुध कोणमें था, गुरु और शुक्र केन्द्रमें थे, राहु और मङ्गल मेषराशिमें थे; तथा जब कुम्भलग्न, सिद्धयोग, चित्रानक्षत्र था और सप्त दण्ड सूर्य उगे थे, उस समय श्रीसुशीलादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी पुत्र—श्रीरामानन्दस्वामीको अवतार दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अनाहता दुन्दुभयो विनेदुः
स्वर्गे तथाभूत्सुमनोतिवृष्टिः।

---

१. यह जन्मसंवत् अशुद्ध सिद्ध हो चुका है, संभव है कि १०० वर्ष पीछे हटना पड़े। भगवदाचार्य।

दिशः प्रसन्नाः सकला बभूवु-
र्जगत्समग्रं सुखमापदग्र्यम् ॥३७॥

स्वर्गमें विना बजाये ही दुन्दुभि बजने लगी। पुष्पोंकी पुष्कलवृष्टि होने लगी। सम्पूर्णदिशाएँ निर्मल हो गयीं। समग्रजगत् परमसुखको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वावतारं जगदीश्वरस्य
तूर्णं समस्ता अमराः सदाराः।
उपागमन् भूमितलं विधातुं
त्रिविष्टपं सर्वसुखैकसारम् ॥३८॥

भगवान्‌का अवतार लेना जानकर, पृथिवीको सम्पूर्णसुखोंका परम-निधान स्वर्ग बनादेनेकेलिये देवगण अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ शीघ्र वहाँ आये ॥ ३८ ॥

दिक्कन्यकाः पीनपयोधराढ्याः
प्रफुल्लपङ्केरुहपाणिपादाः।
दिग्भ्यःसमस्ताभ्य उदारशोभा-
स्समाययुस्तत्र विना विलम्बम् ॥३९॥

मोटे-मोटे स्तनोंवाली, विकसितकमलसमान सुन्दरहस्तपादवाली तथा परमशोभावाली दिक्कुमारियाँ बहुत शीघ्र चारों दिशाओंसे वहाँ आयीं ॥३९॥

नत्वा प्रभुं तज्जननीं च सर्वाः
प्रदक्षिणं चापि विधाय देव्यः।
रत्नप्रभोद्दीपितदीपहस्ता
गायन्त्य एवास्थुरधीरचित्ताः ॥ ४० ॥

देवताओंकी स्त्रियाँ प्रभु और श्रीसुशीलादेवीको नमस्कार करके तथा उनकी प्रदक्षिणा करके, रत्नोंकी कान्ति से देदीप्यमानदीपकोंको हाथमें लेकर प्रेमाधिक्यके कारण अत्यन्त अधीरचित्त होकर गाती हुई वहाँ खड़ी थीं ॥ ४० ॥

काञ्चीगुणोद्भासितसन्नितम्बा
मुखेन लज्जीकृतचन्द्रबिम्बाः ।
विचित्ररत्नाभरणाञ्चिताङ्ग्यः
समाययुश्चाप्सरसः कृशाङ्ग्यः ॥४१॥

मेखलाओंसे सुशोभितसुन्दरनितम्बोंवाली, चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाली, विचित्ररत्नोंके आभूषणोंसे परिष्कृत अङ्गोंवाली तथा कृश-शरीरवाली अप्सराएँ वहाँ आयीं ॥ ४१ ॥

काश्चिच्च तासां धृतदीपहस्ताः
काश्चिच्छिरोन्यस्तसुवर्णकुम्भाः ।
काश्चित्सुरद्रूत्थसुगन्धिपुष्प-
मालासमुद्गांश्च करैर्दधानाः ॥ ४२ ॥

उन सब अप्सराओंमेंसे किसीके हाथोंमें दीपक थे, मस्तकपर सुवर्णके कलश थे तथा किन्हींके हाथोंमें कल्पवृक्षके सुगन्धितपुष्पोंकी मालाओंके डब्बे थे ॥ ४२ ॥

विधाय रूपाणि मनोहराणि
मनुष्यतुल्यानि सुभान्वितानि ।
गायन्त्य आगुः प्रभुपादपद्मा-
न्यालोकितुं तत्र च तीर्थनद्यः ॥४३॥

गङ्गा, यमुना आदि तीर्थनदियाँ अत्यन्तसुन्दरतायुक्त मनुष्यसमान मनोहररूप धारणकरके भगवान् श्रीरामानन्दस्वामीजीके चरणकमलोंके दर्शनके लिये गाती हुई वहाँ प्रयागमें उनके भवनमें आयीं ॥ ४३ ॥

पौराः समस्ताः श्रुतितत्त्वविज्ञा
घनक्रमादिष्वतिचातुरीज्ञाः ।
अधीतिनो व्याकरणे द्विजेन्द्रा-
स्तस्थुश्च वेदध्वनिमारचय्य ॥ ४४ ॥

वेदोंके तत्त्वज्ञ, घन, क्रम, जटा आदिमें अत्यन्त निपुण, तथा व्याकरण-शास्त्रके अध्येता प्रयागनिवासी समस्तब्राह्मण आकर वेदमन्त्रोंको बोलकर बैठ गये ॥ ४४ ॥

ततश्च ता दिक्तनया विधिज्ञा
अरिष्टमागत्य विशुद्धचित्ताः ।
सन्नाभिनालं चतुरङ्गुलोर्ध्वं
शनैः शनैश्चिच्छिदुरङ्ग तस्य ॥ ४५ ॥

उसके पश्चात् पवित्रहृदयवाली तथा विधिको जाननेवाली उन दिक्कन्य-काओंने सूतिकागृहमें जाकर कुमार श्रीरामानन्दकी नाभिके नालको चार अङ्गुल छोड़कर धीरे-धीरे काट दिया ॥ ४५ ॥

कराञ्जलौ ता उपवेश्य नाथं
तन्मातरं चापि दिशातनूजाः ।
गृहेऽपरस्मिन्सुसुखं विवाते
शनैः शनैर्निन्युरथो अमुष्मात् ॥४६॥

तदनन्तर वह दिक्कन्याएँ प्रभु तथा सुशीलादेवीको हाथकी अञ्जलि-पर बैठाकर उस घरसे दूसरे पवनशून्य गृहमें सुखपूर्वक ले गयीं ॥ ४६ ॥

सिंहासने तत्र निवेश्य पूर्व-
मुभौ कुमार्य्यो नवपद्महस्तैः ।

तैलेन पक्केन सुगन्धिना ता

आञ्जञ्छनैः संभृतसंप्रमोदाः ॥ ४७ ॥

उस नवीनगृहमें कुमारिकाएँ अपने नवीनकमलसमान सुकुमारहस्तोंसे माता और पुत्रको सिंहासनपर बैठाकर परमप्रसन्न होकर सुगन्धित पके हुए तैलसे धीरे-धीरे मर्दन करने लगीं ॥ ४७ ॥

सच्छ्रद्धयोद्वर्तनवस्तुना ता

उद्वर्तयाश्चक्रुरमुं कुमारम् ।

ततः परं गन्धविमिश्रिताभि-

रद्भिः सयत्नं स्नपयाम्बभूवुः ॥४८॥

इसके पश्चात् कन्याओंने बालकके शरीरमें उबटन लगाया । तदनन्तर सुगन्धितजलसे यत्नपूर्वक स्नान कराया ॥ ४८ ॥

सच्छीलचारित्रनमस्यवर्या

महीसुरा वेदविदां वरिष्ठाः ।

नैकौषधैर्मिश्रितहोमयोग्य-

द्रव्यैरहौषुः श्रुतिमन्त्रजातैः ॥ ४९ ॥

सुन्दरशील और सुन्दरचारित्रसे वन्दनीयतम तथा वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके नाना प्रकारकी ओषधियोंसे मिश्रित होमके योग्य पदार्थोंसे होम किया ॥ ४९ ॥

गते समाप्तिं सविधि प्रशस्ते

तज्जातकर्मण्यथ पुण्यसद्मा ।

ददौ प्रभूतं द्रविणं द्विजेभ्य-

स्तथानुजीविष्वपि तद्व्यतारीत् ॥५०॥

विधिपूर्वक सुन्दरजातकर्मसंस्कार समाप्त होनेके पश्चात् श्रीपुण्यसदनशर्मा ने ब्राह्मणों को पुष्कलदान दिया तथा सेवकादिको भी पूर्ण द्रव्य दिया ॥५०॥

अवाकिरद्दीनजनेषु वित्त-
मनन्तपारं स उदारचेताः।
प्रायेण लोके प्रथमं मतं त-
च्चिह्नं प्रशस्तं हि कृतार्थतायाः ॥५१॥

उदारहृदयवाले श्रीपुण्यसदनशर्माने दीनजनोंको अनन्तसम्पत्ति बाँटी। क्योंकि प्रायः लोकमें दीनोंको उदारतासे धन लुटाना कृतकृत्यताका मुख्य अत एव उत्तमचिह्न गिना जाता है ॥ ५१ ॥

पुनः समानीय विभुं सुशीला-
मरिष्ट आशातनयास्तथैव।
गायन्त्य एवास्थुरथो समन्ता-
त्सार्द्धं सुरीभिश्च मुदा नरीभिः ॥५२॥

दिक्कन्याएँ प्रभु तथा सुशीलादेवीको जैसे ले गयी थीं उसी प्रकारसे पुनः सूतिकागृहमें ले आयीं और देवताओं तथा मनुष्योंकी स्त्रियों के साथ मिलकर गाती हुई वहाँ बैठ गयीं ॥ ५२ ॥

ततः पुरस्तात्परिभुग्नजानु-
मूर्धान आगत्य सुराः समस्ताः।
स्तुत्यं प्रभुं तुष्टुवुरात्मयोनिं
संन्यस्ततन्मस्तकपद्मशाखाः ॥५३॥

उसके पश्चात् समस्त देव आकर, हाथ जोड़कर, घुटने टेककर, मस्तक झुकाकर, स्तुतिके योग्य, भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥

विहितात्मखेदविगमाः सुराश्च ते
प्रणतिं विधाय भगवत्पदाम्बुजे ।
विभृताश्रुवारिनिचयेक्षणा ययु-
र्दिवमूहितेशनयनेङ्गितश्रियः ॥५४॥

सब देवता प्रसन्न होकर, भगवच्चरणोंमें प्रणाम करके, भगवत्संकेतको समझ कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्वर्ग चले गये ॥ ५४ ॥

संयातेष्वथ सकलेषु पुण्यसद्मा
पुत्रावाप्तिजसुखतो विलीनदुःखः ।
तत्रातिष्ठिपदनघं स आप्तवर्गं
रक्षायै निजतनयस्य साम्बकस्य ॥५५॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामिश्री भगवदाचार्य्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये तृतीयः सर्गः ।

सब देवतादिकोंके चले जानेके पश्चात् पुत्रोत्सवके आनन्दसे जिनका दुःख नष्ट होगया था ऐसे श्रीपुण्यसदनशर्माने श्रीसुशीलादेवी तथा कुमार श्रीरामानन्दकी रक्षाकेलिये वहाँ पवित्र आप्तवर्गको नियत कर दिया ॥५५॥

इति श्रीसारस्वतसार्वभौम-पण्डितराज-परमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य-विरचिते श्रीमद्रामानन्ददिग्विजये
वैजयन्त्याख्यव्याख्यायां तृतीयः सर्गः ।

अथ चतुर्थः सर्गः

आगताथ गुणरूपशालिनी
तत्र सा भगवती सरस्वती ।
यत्कृपालववशाज्जगज्जना
भुञ्जतेऽमरपदं गता इतः ॥ १ ॥

उसके पश्चात् जिनकी कृपाके लेशमात्रसे संसारके मनुष्य इस लोकसे जाकर अमरपदका भोग करते हैं वह गुण और रूपसे शोभित भगवती सरस्वती वहाँ आयीं ॥ १ ॥

वक्तुमारभत दीर्घकालतो-
ऽसह्यदुःखमपि निर्गतप्रभा ।
येन केन विधिना वहन्त्यहो
प्राप्य दीनजननाथमद्य सा ॥ २ ॥

अनन्तसमयसे असह्यदुःखको भी जिस किसी प्रकारसे सहन करती हुई अत एव शोभाहीन वह सरस्वतीदेवी आज दीनजननाथको पाकर बोलने लगीं ॥ २ ॥

आज्ञया भगवतः समागता
देवगीरहमधिक्षिति प्रभो ।
अन्वभूवमिह यां च यातनां
तां न वक्तुमलमुत्सहेऽधुना ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपकी आज्ञा से भूमिपर आकर मैंने जिस यातनाका अनुभव किया है उसे पूर्णरूपसे इस समय कहनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥ ३ ॥

व्यासदेव इह नास्ति साम्प्रतं
गोतमोऽपि कपिलोऽथ जैमिनिः ।
नो कणाद इह विद्यतेऽधुना
वासुदेव मम हृद्यसेवकः ॥ ४ ॥

हे सर्व वस्तुओंके स्थानप्रद सर्वाधार प्रभो ! इस समय इस भारतमें न तो व्यास हैं न गौतम, जैमिनि हैं न कणाद ॥ ४ ॥

पाणिनिर्न न ऋषिः पतञ्जलि-
नैव तेऽपि वसुधासुराः प्रभो।
यैः पुरा प्रतिपलं विमत्सरै-
र्गीयते स्म मम नाम सर्वथा॥ ५॥

तथा न पाणिनि हैं और न पतञ्जलि हैं। हे प्रभो! वह ब्राह्मण भी नहीं हैं जो प्रथम प्रतिदिन शुद्धभावसे मेरा नाम स्मरण किया करते थे॥ ५॥

ब्रह्मवंशरसनैव मे प्रभो
स्थानमत्र परिनिष्ठितं मतम्।
साऽधुना च सततं निषेवते
वैरिणीं मम तुरुष्कभारतीम्॥ ६॥

हे प्रभो! ब्राह्मणवंशकी जिह्वा ही इस पृथ्वीपर मेरा सुनिश्चित स्थान है। वह इस समय मेरी वैरिणी तुर्कभाषाका निरन्तर सेवन कर रही है॥ ६॥

क्षत्रिया हृदयवेदनां विभो
नो विदन्ति मम बोधिता मुहुः।
प्रातिकूल्यमुपयाति दुर्विधौ
नैव कोऽपि दधतेऽनुकूलताम्॥ ७॥

हे नाथ! पुनः पुनः कहने पर भी क्षत्रिय लोग मेरी पीडाको नहीं जानते हैं। सत्य है, विधाताके प्रतिकूल होनेपर कोई भी अनुकूल व्यवहार नहीं करता॥ ७॥

ये विशः खलु विशन्ति तेऽनिशं
केवलं द्रविणराशिचिन्तनम्।

हन्त भाग्यविपरीतताद्य मां
पादघातमवहन्ति निर्दयम् ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! जो वैश्य हैं वह तो सर्वदा धनके संग्रहमें ही लगे रहते हैं। प्रभो, बहुत दुःख है, भाग्यविपरीतता मेरे ऊपर पादप्रहार कर रही है ॥८॥

सन्ति ये त्वनधिकारिणो मता
मद्ग्रहे शरण शूद्रसंज्ञिताः ।
तेऽधुनाऽग्रहपुरस्सरं भृशं
पीडयन्ति किल मामिकां तनुम् ॥ ९ ॥

और हे शरण देनेवाले नाथ ! मेरे ग्रहणमें अनधिकारी जो शूद्र हैं वह इस समय बड़े आग्रहके साथ मेरे शरीर को पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥ ९ ॥

यानि कुत्र करवाणि किं प्रभो
रोदिमि श्रितदयाग्रतस्तव ।
मामसह्यतमदुःखविह्वला-
मुद्धराशु करुणैकसन्निधे ॥१०॥

हे प्रभो ! कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? हे दयालो ! अब तो आपके ही आगे रोती हूँ। असह्य दुःखोंसे व्याकुल, दयासागर मेरा शीघ्रउद्धार करिये ॥ १० ॥

यावदेव विकला सरस्वती-
त्यात्मदुःखमभिधाय निर्गता ।
तावदाययुरनन्तसन्निधौ
वन्दिताः श्रुतय आत्तसंयमैः ॥११॥

व्याकुल सरस्वती उक्त प्रकारसे अपना दुःख निवेदन करके ज्यों ही गयीं त्यों ही जितेन्द्रियोंसे वन्दित श्रुतियां अनन्त भगवान्के पास आयीं ॥ ११ ॥

मस्तकस्थितकरा व्यथाकशा-
ताडिता विदलिताङ्गसन्धयः ।
निर्दिदिक्षव इवात्मवेदनां
स्फूर्जदोष्ठनवपल्लवा बभुः ॥१२॥

हाथ जोड़ी हुई, व्यथारूपी कशा—कोडासे मारी गयी हुई, व्याकरणादि अङ्ग शिथिल हो गये थे जिनके ऐसी, अपनी वेदनाको निवेदन करनेकी इच्छासे फड़फड़ाते हुए ओठोंवाली वे श्रुतियां शोभा देने लगीं ॥ १२ ॥

तन्मुखाम्बुरुहपङ्क्तयः पुरा
दुर्जनान्धतमसेन पीडिताः ।
प्राप्य तं हरिदिवाकरं परं
प्रस्फुटुर्गलितभीतिरीतयः ॥१३॥

प्रथम दुर्जनरूपान्धकारसे श्रुतियोंके मुखरूपकमल पीड़ित हो गये थे । परन्तु उस श्रीहरि श्रीरामानन्दरूपसूर्यको प्राप्तकरके निर्भय होकर वह पुनः खिल गये ॥ १३ ॥

आजगत्त्वमिव जागतैर्जनै-
रात्ममङ्गलकुलाभिकाङ्क्षिभिः ।
जन्मनाद्य तव नाथ पावितो
वन्द्य एष दिवसः शुभावहः ॥१४॥

हे नाथ ! स्वकल्याणके अभिलाषी जनोंका आपके जन्मसे पवित्र वह आजका शुभदिनभी आसृष्टि आपके समानही वन्दनीय है ॥ १४ ॥

देवदेव करुणानिधे विभो
दोषलेशपरिवर्जित प्रभो !

अस्मदर्थकृतगर्भसंस्थिते
भक्तवत्सल हरे नमोऽस्तु ते ॥१५॥

हे देवोंके भी देव ! हे कृपासागर ! हे सर्वव्यापक ! हे नितान्त निर्दोष ! हे समर्थ ! हे हमारेलिये गर्भमें निवास करनेवाले ! हे भक्तवत्सल ! हे सर्वपापोंको हरनेवाले आपको नमस्कार हो ॥ १५ ॥

नास्ति ते किमपि वेदनाद्बहिः
क्वापि नास्ति तव शक्तिहीनता ।
चेत्सि सर्वमिह सर्वदेहिनां
कर्मतुल्यफलसंविभाजक ॥ १६ ॥

हे सर्वप्राणियोंको कर्मानुकूल फलदेनेवाले प्रभो ! आपसे कुछ भी छिपा नहीं है । आपमें असामर्थ्य भी नहीं है । आप सब जानते हैं ॥ १६ ॥

किं वदाम तत एव सर्वग-
त्वत्पुरो निजकथां व्यथाप्रदाम् ।
दुष्टसङ्गजनिताधिसंस्मृतौ
तत्स्मृतिर्भवति तच्च दुःखदम् ॥ १७ ॥

हे सर्वव्यापिन् ! अतः आपके सामने हम अत्यन्त दुःखप्रद अपनी कथा क्या कहें ? दुष्टों के संगसे जयमान दुःखके स्मरणमें दुष्टोंका भी स्मरण हो जाता है और वह दुःखद है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणास्तव मुखाद्विनिस्सृता
रक्षणाय सततं न उद्यताः ।
हन्त दुर्यवनशासकेन ते
घातिताश्च यवनीकृता विभो ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! आपके मुखसे उत्पन्न हुए अत एव पवित्रब्राह्मण हमारी रक्षा-केलिये सर्वदा उद्यत थे; परन्तु दुष्टयवन राजाने सबको मार डाला तथा यबन बना लिया ॥ १८ ॥

क्षत्त्रियाश्च निजराज्यरक्षणे
हिन्दुधर्मपरिरक्षणे रताः ।
यावनैर्मनुजतावमर्दिभिः
सैनिकैरधिसमित्समाहताः ॥ १९ ॥

अपने राज्य तथा हिन्दुधर्मके रक्षणकरनेमें लगे हुए क्षत्रिय को मनुष्यताका नाश करनेवाली मुसलमानी सेनाने युद्धमें मार डाला ॥ १९ ॥

केवलं न पुरुषाः पतङ्गतां
भेजिरेऽत्र समरानलेऽखिलाः ।
किन्तु हन्त ललनाः पतिव्रताः
प्राप्नुवन्नपि हि भस्मशेषताम् ॥२०॥

समररूप अग्निमें केवल पुरुष ही पतङ्गके समान भस्म होगये हों सो नहीं; किन्तु पतिव्रतामहिलाएँ भी भस्स होकर राखकी ढेर होगयीं ॥२०॥

नाममात्रपरिशेषशालिनो
नष्टपूर्वविचिताततर्द्धयः ।
भाग्यदुर्विलसितैधिताधयो
यातनामिह सहामहे प्रभो ॥ २१ ॥

हे प्रभो ! हमारी पूर्वकी सञ्चित महती ऋद्धियाँ नष्ट हो गयीं, भाग्यके दुर्विलाससे दुःख बढ़ गये, नाममात्रकी बची हुई हमलोग यहाँ नरककी पीड़ा सह रही हैं ॥ २१ ॥

कं प्रयाम शरणं त्वया विना
ब्रूहि नाथ किमिहाद्य कुर्महे ।

पाहि पाहि परमेश्वराधुना
ता वदन्त्य इति तत्यजुश्चितम् ॥ २२ ॥

हे नाथ ! आपके अतिरिक्त हमलोग किसकी शरणमें जावें ! हमलोग क्या करें सो आज्ञा कीजिये। हे परमेश्वर ! इस समय हमलोगोंको बचाइये। इस प्रकारसे बोलती हुई वह श्रुतियाँ मूर्छित हो गयीं ॥ २२ ॥

उत्थिता पुनरवाप्तचेतना
दर्शिताखिलमहेद्धवेदनाः।
त्वं विधेहि समयोचितं शनै-
रित्युदीर्य निरयुर्नताननाः ॥ २३ ॥

जब चेतना प्राप्त हुई तब उठकर उन्होंने पुनः अपनी सब वेदनाओंका वर्णन किया। पश्चात् हे नाथ ! 'जैसा उचित हो वैसा करिये' ऐसा धीरेसे कहकर मुख नीचे की हुई वह सब श्रुतियाँ चली गयीं ॥ २३ ॥

निर्गतासु विकलासु तासु त-
त्सन्निधेः श्रुतिसतीषु विह्वलाः।
गाव आर्तवदना विलोकिता-
स्तेन सर्वजगदेकबन्धुना ॥ २४ ॥

व्याकुल उन पवित्रश्रुतियोंके चले जाने पर निखिल-जगद्बन्धु श्रीरामानन्दने विह्वल दुःखित—वदनवाली गौओंको देखा ॥ २४ ॥

एत्य ताः सविपदो महेश्वरे
सादरं व्यरचन्नमस्क्रियाम्।
क्षीणकान्तिवदनास्ततः परं
निर्गलत्सलिलचक्षुषोऽवदन् ॥ २५ ॥

कान्तिशून्यमुखवाली उन सीधी गौओंने वहाँ आकर आदरसहित प्रभुको प्रणाम किया। पश्चात् रोती हुई बोलने लगीं॥ २५॥

दीनरक्षणविधौ सदोद्यतौ
नाथ दुष्टदलनक्षमौ तव।
अप्रधृष्यबलशालिनावुभौ
सर्वमोक्षद भुजौ भजामहे॥ २६॥

हे नाथ! हे सबको दुःखोंसे छुड़ानेवाले! दीनोंकी रक्षाकेलिये सर्वदा उद्यत, दुष्टोंके दलन करनेमें समर्थ, अधर्षणीय बलसे शोभमान आपकी दोनों भुजाओंको हम भजती हैं॥ २६॥

दुर्दशा भवति याधुनेह नो
नाथ पश्य करुणेक्षणेन ताम्।
त्वद्विना न जगदीश कोपि नो
रक्षणं बत गवां विधास्यते॥ २७॥

हे नाथ! यहाँपर आजकल हमलोगोंकी जो दुर्दशा हो रही है उसका कृपादृष्टिसे अवलोकन कीजिये। हे जगदीश! आपके बिना हम गौओंकी कोई भी रक्षा नहीं करेगा॥ २७॥

वन्यमेव तृणमत्र भुज्यते
पल्वलस्थसलिलं च पीयते।
याच्यते किमपि नैव कर्हिचि
दीयते सुपयसां चयः सदा॥ २८॥

हम लोग जङ्गलकी घास खाती हैं। तालाबका जल पीती हैं। कभी कुछ मांगती नहीं हैं और पुष्कल दूध देती हैं॥ २८॥

घ्नन्ति नः कुलमथापि घातुका
हस्तपादमभिवध्य निर्दयम्।

क्रन्दनं च तदरण्यरोदनं
रुध्यते न किल कण्ठकर्तनम् ॥ २९ ॥

तथापि हिंसकलोग हाथ और पैर बांध कर निर्दयताके साथ हमारे वंशकी हिंसा कर रहे हैं। हमारा दीनतापूर्ण रोदन अरण्यरोदनके समान व्यर्थ हो जाता है और हमारा गला कटना बन्द नहीं होता है ॥ २९ ॥

ते सदास्मदधिदुग्धपायिनो
हिन्दवोऽपि न भवन्ति रक्षकाः।
स्वार्थसाधनपराः प्रभो परं
बन्धुता हि समये परीक्ष्यते ॥ ३० ॥

सदा हमारे पवित्र दूध पीने वाले हिन्दु भी हमारी रक्षा नहीं करते हैं। वह सब केवल स्वार्थी हैं। क्योंकि बन्धुत्वकी परीक्षा समयपर ही होती है ॥ ३० ॥

दीनमेव तव गोकुलं प्रभो
दुष्टमर्दि सुबलं प्रतीक्षते।
लोकतो हि गमिता निराशता-
माश्रयन्ति परदैवतं जनाः ॥ ३१ ॥

दीन गौएँ दुष्टोंके नाश करनेवाले आपके ही बलकी प्रतीक्षा कर रही हैं। क्यों कि संसारका नियम है कि जब लोग संसार और सांसारिक बलसे निराश हो जाते हैं तभी प्रभुकी शरणमें आते हैं ॥ ३१ ॥

शृण्वतो हृदयभेदनक्षमां
वेदनां श्रुतिसरस्वतीगवाम्।
तेजसो विसर उत्थितो मुखा-
च्छ्रीहरेर्जगदशेषमानसे ॥ ३२ ॥

श्रुति, सरस्वती और गौओंकी हृदयभेदिनी वेदनाको सुनते ही भगवान्‌के मुख से एक तेज निकला और वह संसारभरमें व्याप्त हो गया ॥ ३२ ॥

तत्समस्तजनकौतुकं दध-
त्सूर्यकोटितुलितप्रभुं महः ।
सूचयत्तदवतारमुत्तमं
वैष्णवं जगति सर्वतो बभौ ॥ ३३ ॥

सर्व जनोंको आश्चर्यित कराता हुआ करोड़ों सूर्योंकी कान्तिके समान वह तेज, संसार में चारोंओर इस श्रेष्ठ विष्णु अवतारकी सूचना देता हुआ शोभित होने लगा ॥ ३३ ॥

रायि वृद्धिरतुलाऽभवन्मया
ऽऽनर्धं कीर्तिरपि पुण्यसद्मनः ।
रेतिमेतिशुभवर्णसंयुतो
नन्द इत्यकृत नाम तस्य सः ॥ ३४ ॥

इस पुत्रके कारण श्रीपुण्यसदनशर्माकी सम्पत्तिमें अतुलवृद्धि हुई तथा लक्ष्मीसे उनकी कीर्ति भी बढ़ गयी। अत एव उन्होंने रा–मा इन दो अक्षरोंके साथ नन्द जोड़ कर उस बालक का 'रामानन्द' नाम रखा ॥ ३४ ॥

किं च राम इह मानवीं तनुं
स्वीचकार कृपयेति तत्पिता ।
तस्य नाम दशमोत्तरे मुदा-
ऽऽनन्दयुक्तमतत श्रुतश्रुतिः ॥ ३५ ॥

अथवा वेदार्थज्ञ श्री पुण्यसदनशर्माने यह विचार कर कि "भगवान् श्री राम कृपाकरके मेरे गृहमें मानुष शरीर धारणकरके पधारे हैं" अतः

प्रसन्नतासे इग्यारहवें दिन रामके साथ आनन्द जोड़कर "रामानन्द" बालकका नाम रखा ॥ ३५ ॥

मातुरप्यथ पितुः सुखं दद-
त्संविदान इह सर्वमप्यसौ ।
हन्त जातिमनुसृत्य मानवीं
बालको विचरति स्म नित्यशः ॥३६॥

तदन्तर माता पिताको सुख देते हुए और सब कुछ जानते हुए भी वह श्रीरामानन्द मनुष्य जातिके समान बालक होकर विचरते थे ॥३६॥

नूत्नरत्ननिचयप्रपञ्चिते-
मञ्चके परिशयान आत्मभूः ।
नैजपादकमलं क्षिपन्मुदा
स क्रमेण बिभिदे सतामरीन् ॥३७॥

सुन्दर रत्नराशिसे सुशोभितपर्यङ्कके ऊपर सोते हुए अपने कमल चरणोंको क्रमसे पछाड़ते हुए प्रभुने सज्जनोंके शत्रुओंका नाश कर दिया ॥ ३७ ॥

उद्गतं नवसरोरुहानने
तस्य दन्तयुगलं क्रमाच्छुभम् ।
तत्प्रभा च हरिदश्वसत्प्रभा-
ऽद्वैतवादमतिदूरमक्षिपत् ॥ ३८ ॥

क्रमसे प्रभुके कमलसमान मुखमें परममनोहर दो दाँत निकले। सूर्यकी प्रभाके समान उन दाँतोंकी प्रभाने अद्वैतवादको अत्यन्त दूर फेंक दिया ॥ ३८ ॥

हास्यमस्य वदने विलोकयन्
संजहर्ष जनकः स्वभार्यया ।
वीक्ष्य तस्य पतनं विसर्पतः
संजहास स च सा च सोऽपि च ॥३९॥

प्रभुके मुखपर हँसीको देखकर श्रीपुण्यसदन और माता सुशीला दोनों प्रसन्न होते थे। चलते हुए जब वह गिर जाते थे तब माता, पिता और वह स्वयं भी हँस देते थे ॥ ३९ ॥

तन्मुखात्त्रिचतुराणि शोभना-
न्यक्षराणि निरयुर्यदक्रमात् ।
तानि वादिगजविक्रमेऽक्रमं
सन्दधुः क्रमश एव नूतनम् ॥ ४० ॥

श्रीप्रभुके मुखमेंसे बाल्यावस्थामें जो प्रारम्भिक क्रमविनाके टूटे-फूटे शब्द निकलते थे उन्होंने वादिरूपहस्तियोंके पराक्रममें नवीनजडता पैदा कर दी ॥ ४० ॥

कोकिलानपि विमूकयँस्तथा
वल्लकीमपि विलज्जयञ्छिशुः ।
संजगाद विमलां मनोहरां
स क्रमेण मधुरां गिरावलिम् ॥ ४१ ॥

कोकिलोंको भी चुप कराते हुए वीणाको भी लज्जित करते हुए स्तनन्धय श्रीप्रभु क्रमशः कर्णसुखावह सुस्पष्टवाणी बोलने लग गये ॥४१॥

पादचारमपि चन्द्रशोभन-
स्सन्ततान शनकैर्मनोरमम् ।

एवमेव ववृधे द्विजात्मजो
नन्दयन्निजगुरुं च मातरम् ॥ ४२ ॥

चन्द्रसमानसुन्दर श्रीप्रभु शनैः-शनैः सुन्दर पादविक्षेप भी करने लगे। इस प्रकारसे अपनी माता और पिताको आनन्दित करते हुए वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥

यत्तेजःपटलैर्निरन्तरशिखैः सर्वा दिशो भासिता-
श्चेतोहारियदीयकान्तिलहरीप्रक्षालिताः सद्दृशः।
यत्कीर्तेर्निचयेन स्वर्गतवता चन्द्रः कृतः पाण्डुरः,
सोऽयं ब्रह्मकुमारतामधिगतः सर्वेश्वरोऽवर्द्धत ॥४३॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौमपण्डितराजपरमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य्यविरचिते श्रीमद्रामानन्द-
दिग्विजये चतुर्थः सर्गः

जिसके सघन शिखवाले तेजःसमूहसे सब दिशाएँ प्रकाशित हो गयी थीं, जिसकी मनोहर कान्तिके लहरियोंसे सज्जनोंकी आँखें स्वच्छ हो गयी थीं, स्वर्गपर्यन्त गयी हुई जिनकी कीर्तिने चन्द्रको धवलित कर दिया था, वही सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज ब्राह्मणकुमार बन कर बढ़ने लगे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीसारस्वतसार्वभौमपण्डितराजपरमहंसपरिव्राजकस्वामि-
श्रीभगवदाचार्य्यविरचिते श्रीमद्रामानन्द-
दिग्विजये वैजन्त्याख्यव्याख्यायां
चतुर्थः सर्गः।